

# शब्द रंजन

संस्थापक एवं संरक्षक डॉ. महेन्द्र भानावत

विचार एवं जनसंवाद का पाक्षिक

वर्ष 8

अंक 23

उदयपुर शुक्रवार 01 दिसंबर 2023

पेज 8

मूल्य 5 रु.

## चार महाराणाओं के प्रधान रहे टाकुर अमरचन्द बड़वा

- डॉ. मनीष श्रीमाली -

अमरचन्द पर जब सरकारी सम्पत्ति के अपहरण के मिथ्या आरोप लगे तो उस स्वाभिमानी व्यक्ति ने व्यथित होकर अपनी समस्त सम्पत्ति छड़कों में भर महलों में भिजवा दी। जब उनका निधन हुआ तब उनके घर में कफन हेतु कपड़ा भी नहीं मिला।

धर्म और मातृभूमि के प्रति मेवाड़वासियों की अटूट आस्था का ही वह भाव था कि यहां के शासक, सामन्त, अधिकारी एवं आमजन तक सभी ने त्याग, साहस, वीरता एवं बलिदान की कई अमर गाथाओं का निर्माण किया जो सदैव हम सभी के लिए प्रेरणा स्रोत है। यही वजह है कि मेवाड़ भारतीय इतिहास का एक अहम अध्याय है। वैसे तो यहां के इतिहास में आदर्श एवं अनुकरणीय व्यक्तियों की एक लम्बी पंक्ति है किन्तु इसमें एक नाम बेहद विशिष्ट है और वो नाम है, मेवाड़ के चार महाराणाओं के प्रधान रहे टाकुर अमरचन्द बड़वा का।

टाकुर अमरचन्द बड़वा के पूर्वज उत्तरप्रदेश से मेवाड़ आये थे। यह परिवार मेवाड़ राजपरिवार के प्रति निष्ठा एवं स्वाभिमानी की वजह से महाराणाओं के नजदीक ही रहा था। ठा. अमरचन्द बड़वा के पिता शम्भूराम बड़वा थे। शम्भूराम बड़वा महाराणा जगतसिंह द्वितीय (1734-51 ई.) के समय महलों में पाकशाला अध्यक्ष थे। किन्हीं कारणवश महाराणा जगतसिंह द्वितीय और उनके पुत्र प्रतापसिंह द्वितीय के मध्य अनबन हो होने पर कुंवर प्रतापसिंह को कर्ण विलास में नजरबंद कर दिया गया था।

कुंवर की देखभाल की जिम्मेदारी शम्भूराम बड़वा को दी गई। यह बेहद कठिन कार्य था क्योंकि इस समय मेवाड़ के राजसिंहासन के लिए चारों तरफ षडयंत्र रचे जा रहे थे। ऐसे में कुंवर प्रतापसिंह के जीवन पर भी खतरा मंडरा रहा था। मेवाड़ के कुछ विद्रोही सरदारों ने कुंवर को जान से मारने हेतु उन्हें विषयुक्त भोजन भेजा किन्तु इसकी भनक शम्भूरामजी को लग गई। कुंवर को बचाने का कोई

मार्ग दिखाई न पड़ा तो शम्भूरामजी ने वह विषयुक्त भोजन स्वयं कर मेवाड़ के भावी महाराणा के जीवन की रक्षा की। इस घटना ने कुंवर प्रतापसिंह के समक्ष



चाटुकार सरदारों की कुटिलता को उजागर कर दिया। शम्भूरामजी की मृत्यु के बाद कुंवर की जिम्मेदारी उनके पुत्र अमरचन्द पर आ गई जिसे उन्होंने बखूबी निभाया। इस संकट काल में ही कुंवर प्रतापसिंह द्वितीय को सही और गलत की पहचान अच्छे से हो सकी।

महाराणा जगतसिंह द्वितीय के बाद मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय बने। शासक बनते ही प्रतापसिंह ने राज्य के सबसे महत्वपूर्ण पर 'प्रधान' पर अमरचन्द बड़वा को नियुक्त की। प्रधान पद पर अमरचन्द बड़वा की नियुक्ति कोई आश्चर्य का विषय नहीं था। कुंवर पद रहते ही प्रतापसिंहजी पिता और पुत्र की योग्यता, कार्य-कुशलता, त्याग-बलिदान और स्वाभिमानी के गुणों से स्वयं प्रत्यक्ष रूप से परिचित हो चुके थे। अमरचन्दजी बड़वा को प्रधान के पद के साथ टाकुर की पदवी एवं ताजीम

भी प्रदान की गई। अब उनके व्यक्तित्व के अनुरूप नाम के साथ उपाधिस्वरूप 'टाकुर' भी जुड़ चुका था। ठा. अमरचन्दजी चार महाराणाओं- प्रतापसिंह

द्वितीय, राजसिंह द्वितीय, अरिसिंह द्वितीय एवं हमीरसिंह द्वितीय के शासनकाल में लगभग पच्चीस वर्षों तक मेवाड़ के प्रधान रहे।

प्रतापसिंह द्वितीय एवं राजसिंह द्वितीय के मेवाड़ महाराणा रहते प्रधान के रूप में ठा. अमरचन्दजी ने पूर्ण मनोयोग से मेवाड़ के उत्कर्ष हेतु कार्य किया जिसको महाराणा द्वारा समर्थन मिला। महाराणा अरिसिंह द्वितीय तेज मिजाज एवं स्व इच्छानुरूप शासन करने वाले शासक थे। इन्हीं गुणों के कारण महाराणा और प्रधान दोनों में सामंजस्य नहीं बैठ पाया। अतः कुछ समय के लिए ठा. अमरचन्दजी को पद मुक्त कर दिया गया। योग्य व्यक्ति को उसके यथोचित कार्य से अधिक समय तक दूर नहीं किया जा सकता है। बहुत तेजी से समय ने पलटा खाय। मेवाड़ अब मुगलों के बाद मराठों के साथ शक्ति-



ठा. अमरचन्द बड़वा

संघर्ष में उलझ गया था। जनवरी 1768 में उज्जैन के निकट क्षिप्रा नदी के किनारे मेवाड़ और माधवराव सिंधिया (महादजी) की सेनाओं के मध्य भीषण संघर्ष हुआ जिसमें मेवाड़ को भयंकर क्षति उठानी पड़ी।

क्षिप्रा युद्ध के बाद सिंधिया की सेनाएं जब द्रुत गति से मेवाड़ की ओर बढ़ने लगी तो राजा से लेकर प्रजा तक सभी घबरा गये। शायद यह समय मेवाड़ के इतिहास का सबसे नाजुक दौर था। एक ओर क्षिप्रा युद्ध में हुई जन हानि ने मेवाड़ राज्य की स्थिति को चरमरा दिया था तो दूसरी ओर मेवाड़ आंतरिक रूप से भी एक न था। मेवाड़ के सामन्तों का एक गुट महाराणा का विरोध करते हुए रत्नसिंह को महाराणा बनाने हेतु प्रयासरत था।

महाराणा अरिसिंहजी की स्थिति बेहद कमजोर थी। इस समय केवल पांच सामन्त ही महाराणा का समर्थन कर रहे थे। युद्ध काल में राज्य की शक्ति उसकी सेना होती है किन्तु दुर्भाग्य से सिंधी मुसलमान सैनिक जो इस समय मेवाड़ की सेना में बड़ी संख्या में थे, वेतन को लेकर विद्रोह पर उतर आए। इस बेहद भंगुर अवस्था में महाराणा के एक सलाहकार ने तो उन्हें महल छोड़ पहाड़ों में जाने फिर माण्डलगढ़ में छिपने की सलाह तक दे दी थी। जिस प्रकार अग्नि रूपी प्रकाश की महत्ता रात्रि में ही महसूस की जाती है वैसे ही गुणी व्यक्ति का महत्त्व विपरीत परिस्थितियों में पता चलता है। जब कोई आश की किरण नजर नहीं आ रही थी तब ठा. अमरचन्दजी बड़वा के निवास पर जाकर अहम दायित्व सौंपा जिसे उन्होंने कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता देने की शर्त पर स्वीकार किया।

अमरचन्दजी बड़वा ने रण छोड़ने के स्थान पर संघर्ष का पथ चुना। सर्वप्रथम सिंधी सिपाहियों के असंतोष को शान्त कर महाराणा का स्वामीभक्त सेवक बना दिया।

-शेष पृष्ठ सात पर

## मीरां बनना किसी स्त्री का सौभाग्य नहीं : महादेवी वर्मा

डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर ने मीरां के सन्दर्भ में प्रासंगिकता की बातचीत के दौरान कोई 50-60 साल पुरानी संगोष्ठी का जिक्र करते अनेक बातों का खुलासा किया। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पांच दिन तक हुई मीरां के जीवन तथा रचना कर्म की संगोष्ठी में विद्वानों ने अनेक ऐसी मनगढ़ंत बातें कहीं जिनसे महादेवी वर्मा खुश नहीं थी। अन्तिम दिन की संगोष्ठी की अध्यक्षता करते महादेवीजी ने कहा कि विद्वानों ने मीरां को ठीक से समझने की कोशिश नहीं की। मीरां राजघराने की महिला थी।

लोक उन्हें कैसे जान पाता। फिर विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से उसे समझा और बिना उसका जीवनवृत्त जाने लेखन किया। मीरां लेखन के कारण जिन्दा नहीं है। विद्वानों ने मीरां से मेरी तुलना कर दी जो नितान्त असम्भव है। मीरां बनना किसी स्त्री का सौभाग्य नहीं है। मीरां तो मीरां थी। दूसरी कोई मीरां हो ही नहीं सकती। न आज होगी और न कालान्तर में होगी।

महादेवीजी ने स्पष्ट किया कि मीरां के साहित्य पर विद्वानों ने 50 किताबें निकाल दीं।

**मीरां लेखन के कारण जिन्दा नहीं है। विद्वानों ने मीरां से मेरी तुलना कर दी जो नितान्त असम्भव है। मीरां बनना किसी स्त्री का सौभाग्य नहीं है। मीरां तो मीरां थी। दूसरी कोई मीरां हो ही नहीं सकती। न आज होगी और न कालान्तर में होगी। मीरां की मेरे से तुलना करना मेरा अपमान है। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया कि मैं मीरां हो जाऊं। विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा नहीं होनी चाहिये। सच तो यह है कि मीरां पर जिन्होंने काम किया उन पर भी अनुसंधान होना चाहिये। देश के प्रत्येक प्रान्त में, प्रत्येक भाषा में मीरां की छाप के पद हैं। गहरे अध्ययन के अभाव और स्पष्ट सोच की कमी से लोगों द्वारा लिखे पद भी मीरां के नाम से प्रचलित हैं और पढ़ाये भी जा रहे हैं। क्या मीरां सभी भाषाओं की विद्वान थी। माई लोगों ने तो राजघराने की एक प्रतिष्ठित राजरानी को सार्वजनिक रूप से पांवों में घुघरू बांध नाचने वाली तक लिख दिया- 'पग घुघरू बांधि मीरां नाची रे।' अधिक अच्छा तो यही होगा कि कुछ समय के लिए मीरां का अध्ययन बन्द कर जो कुछ लिखा गया है उसका पारायण कर विद्वान उसकी प्राणायिकता की खोज करें। विद्वानों ने मीरां के सत्य तथ्य को इतना उलझा दिया कि सचमुच की मीरां का पता लगाना ही दुष्कर हो गया और वह मात्र मिथक बनकर रह गई।**

मीरां की मेरे से तुलना करना मेरा अपमान है। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया कि मैं मीरां हो जाऊं। यूनिवर्सिटी ने तुलनात्मक अध्ययन बन्द कर ठीक ही किया। विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा नहीं होनी चाहिये।

डॉ. राजेन्द्र मोहन ने बताया कि जब डॉ.

नेमनारायण जोशी सुखाड़िया विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे तब मीरांपीठ की स्थापना हुई थी। आज उस पीठ का कहीं नाम ही नहीं है। उस जमाने में इतने लोग थे जिन्होंने मीरां पर जैसा समझ आया वैसा लिखा और खूब लिखा। यह धारा आज भी जारी है। सच तो यह है कि मीरां पर जिन्होंने काम किया उन पर भी अनुसंधान होना चाहिये।

मीरां के पदों पर हुई बातचीत में डॉ. राजेन्द्र मोहन बोले कि यह गहरी समझने की बात है कि देश के प्रत्येक प्रान्त में, प्रत्येक भाषा में मीरां की छाप के पद हैं। गहरे अध्ययन के अभाव और स्पष्ट सोच की कमी से लोगों द्वारा लिखे पद भी मीरां के नाम से प्रचलित हैं और पढ़ाये भी जा रहे हैं। क्या मीरां सभी भाषाओं की विद्वान थी। क्या उस समय पढ़ाई व्यवस्था थी और राजघराने की क्या परम्परा थी, हमारे मनीषियों ने जानने की

कोई तकलीफ नहीं की। मेवाड़ का राजघराना अन्य घरानों से किन-किन सन्दर्भों में जुदा रहा, यह भी नहीं जाना।

मीरां के जो प्रचलित पद हैं उनमें भी कई तरह का विरोधाभास देखने को मिलता है। उसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे मीरां के लिखे नहीं हैं।

भाई लोगों ने तो राजघराने की एक प्रतिष्ठित राजरानी को सार्वजनिक रूप से पांवों में घुघरू बांध नाचने वाली तक लिख दिया- 'पग घुघरू बांधि मीरां नाची रे।' ऐसे सैकड़ों पद क्षेपक लिए हैं लेकिन आश्चर्य तो यह है कि विद्वान लोग उन्हीं पदों को मीरां लिखित मानते हुए निरन्तर लिखे जा रहे हैं और वे पढ़ाये भी जा रहे हैं।

- शेष पृष्ठ सात पर

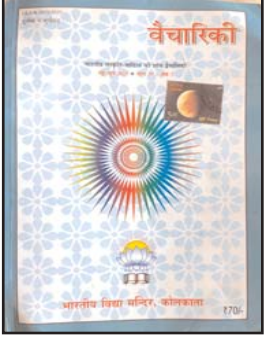
अब आप शब्द रंजन समाचार इस लिंक पर भी पढ़ सकते हैं- <https://thetimesofudaipur.com/shabd-ranjan/>



## पोथीखाना

## 'वैचारिकी' का सम्पादकीय

भारतीय विद्यामन्दिर, कोलकाता से प्रकाशित वैचारिकी द्वैमासिक पत्रिका के मई-जून 2023 के अंक में सम्पादक डॉ. बाबूलाल शर्मा ने अपने सम्पादकीय में छोटी-छोटी टिप्पणियों के माध्यम से साहित्य, लेखन और लेखक को लेकर बड़ी मजेदार किन्तु गम्भीर सोचनीय दृष्टि-संकेत से पाठकों को सोचने, समझने और चिन्तन कर तिलमिलाने का जोग-संजोग सुलभ किया है। कुछ टिप्पणी अंश द्रष्टव्य हैं।



(1) इन दिनों किसी प्रकार की लेखकीय या रचनात्मक योग्यता या प्रतिभा की जरूरत नहीं, बस किसी को अचानक यह लग जाना चाहिये कि वह लिख सकता है। ऐसे रचनाकारों-लेखकों विशेषकर कवियों तथा पुस्तकों की बाड़ आई हुई है।

जबकि हमारे ही लोग यह कहते जा रहे हैं कि अब पाठकों की कमी आ गई है और पुस्तकें भी कम प्रकाशित हो रही हैं जबकि इसी वर्ष राजस्थान साहित्य अकादमी ने सवा सौ से अधिक पाण्डुलिपियों पर प्रकाशन सहायता देकर पिछले 60 वर्षों के पाण्डुलिपि सहयोग का रेकार्ड तोड़ा है।

(2) छायावाद के बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और न जाने कौन-कौन से वाद और कवियों की श्मशानी पीढ़ी जैसी पीढ़ियों का दौर चला। पता नहीं, अब किस वाद या पीढ़ी का दौर चल रहा है। हां, यह अवश्य है कि कविता से विरक्ति का दौर चल रहा है। कोई सुनने वाला नहीं है कविता।

अब वे कवि सम्मेलन और वे भोर से लेकर प्रातर्वेला तक के कवियों के दौर नहीं रहे। उसके बाद गलाफाड़ कवि और माइक पटक भोंपू भी गायब हो गये। कविता की किस्म बदल गई। कविता के उस दौर से विरक्ति हो गई है कारण कि वह रक्ति रतिकामा का माहौल नहीं रहा पर कवि सम्मेलन तो अब दूसरी रंगत के पाण पर चढ़े मिलते हैं। हालांकि कविता किसी कवि के पास नहीं होकर निरीह बकवास! सुनने को मिलती है पर उसका रस लेने के लिए भी आयोजक और श्रोताओं की कमी नहीं रही बल्कि जो कवि (तथाकथित!) चल निकले हैं उनकी तो पौ बारह बनी हुई है।

छुटपुट साहित्यिक संस्थाएं अवश्य कवि गोष्ठियां करती हैं पर उनकी स्थिति यह हो गई है कि कवि ही श्रोता और कवि ही प्रस्तोता होते हैं। काव्यधारा की स्थिति से किसी को कोई सरोकार नहीं, सुबह अखबार में उनका नाम देखने को मिल जाये तो ही उनकी सफल गोष्ठी अन्यथा तो आफरा ऐसा चढ़ा मिलता है कि पूछो ने!

(3) एक प्रतिष्ठित विद्वान ने मीराबाई पर व्याख्यान के दौरान कुछ पंक्तियों का विचित्र अर्थ बता दिया। उन्होंने मीरा की इस पंक्ति- 'जौहरी की गति जौहरी जाने, जे कोई जौहरी होय' के जौहरी शब्द का अर्थ जवाहरात का व्यवसायी-पारखी कर

दिया क्योंकि वे राजस्थान के उस इतिहास से परिचित नहीं थे जिसमें मरण युद्ध करने के लिए जाने वाले वीरों की स्त्रियों द्वारा किये गये जौहर (अग्निस्नान) के प्रसंग है। - पृ. 12

वस्तुतः मीराबाई ने ऐसा कुछ नहीं लिखा। जितने विद्वानों ने मीराबाई पर लिखा, सबने बिना मीरा को समझे, चित्तौड़ देखे, उस काल को ठीक से जाने अपने-अपने ढंग से लिख दिया। यह बेदुब लेखन अब भी चल रहा है। जौहरी वाली चाल की जो प्रसिद्ध पंक्ति है वह इस प्रकार सुनने को मिलती है-

मैं तो दरद दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय।

घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय।।

मीराबाई कृष्ण के विरह में दीवानी थी। यह दीवानगी इस हद तक थी कि वह अपने प्रिय की स्मृति में विस्मृत, बेसुध हो जाती थी। इस सन्दर्भ में जौहरी की न वह उपमा संगत लगती है जो जवाहरात व्यापारी से सन्दर्भित है और न जौहर के अग्निस्नान की।

जौहर की बात छिड़ गई तो स्पष्ट है जौहर का सन्दर्भ मीराबाई के सन्दर्भ से नितान्त भिन्न है। जौहर कब किसे क्यों करना पड़ता है। जौहर के लिए राजस्थान का चित्तौड़गढ़, गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ गढ़ाये के रूप में प्रसिद्धि लिए हैं। यहां का जौहर कुण्ड जौहर के लिए ख्यात है। प्रसिद्धि है कि इसमें सौलह हजार नारियों ने अपना आत्म बलिदान, अग्निस्नान किया था।

मीराबाई पर मेरी नई शोधदृष्टिपरक एक पुस्तक 'निर्भय मीरा' नाम से 1994 में प्रकाशित हुई। इसके लिए मैंने उन छह प्रान्तों की यात्राएं कीं जहां-जहां मीराबाई चित्तौड़ से निष्कासित होकर भ्रमण करती गईं और अन्त में द्वारिका के समुद्र में अपना समर्पण दिया। कहना नहीं होगा कि अपने पति भोजराज की मृत्यु के बाद मीरा ने चालीस वर्ष की उम्र में चित्तौड़ छोड़ 42 वर्ष लगातार विविध तीर्थों, पवित्र स्थलों, सन्तों-महन्तों से भेंट कर 82 वर्ष की उम्र में इहलीला समाप्त की।

मीराबाई को विद्वानों ने 'भक्तिमती' कहा है पर भक्ति को ठीक से परिभाषित नहीं करने के कारण उसकी भक्ति-रति की व्याख्या ही गलत कर दी। बड़े सुप्रसिद्ध कृष्ण मन्दिरों में अभी भी आरती के वक्त भक्ति की रति स्थिति देखी जा सकती है जहां कुछेक विदेह की स्थिति लिए तन्मय हुए देखने को मिलते हैं। मीरा की विदेह स्थिति बीस-बीस घण्टे रही। जब वह विदेह हो जाती, कृष्ण सदेह हो उससे बातचीत करते और जब वह सदेह होती, कृष्ण विदेह हो जाते। बातचीत के जो अंतरंग तार चलते उसे जगत सुनता और अपने-अपने ढंग से काव्यसृजित कर जगजाहिर करता।

ऐसे लाखों की संख्या में विभिन्न भाषा-बोलियों में मीरा की छाप के पद आज भी मौखिक कण्ठासीन रूप में विविध समुदायों, भजन मण्डलियों, गायकों तथा पदयात्रियों के मुख से सुनने को मिलते हैं। यह सृजन आज भी हो रहा है। यों हमारे यहां अन्य प्रसिद्ध सन्तों-महात्माओं के नाम, छाप के पद लिखने की परम्परा रही है। इसी के रहते कबीर, मीरा, चन्द्रसखी जैसे सन्तों तथा संतानियों के नाम के पद क्षेपक रूप में हजारों की संख्या में प्रचलन में हैं। - म. भा.

## सकारात्मक सोच ही मैत्री का भाव

- आचार्य महाप्रज्ञ -

दूसरों के प्रति हमारे मन में जो बुरा विचार आया, उसका पता किसी को लगे या न लगे किन्तु वह विचार हमारे मस्तिष्क में अवश्य रिकॉर्ड हो जाता है और उसका परिणाम भी हमें भोगना पड़ता है। जिसके मन में मैत्री जागृत होती है, वह कभी किसी का अहित नहीं कर सकता। स्वयं के प्रति नकारात्मक सोच रखना शत्रुता है और स्वयं के प्रति सकारात्मक सोच रखना मैत्री है। स्व के प्रति इष्ट चिन्तन करने वाला ही प्राणी मात्र के हितों की रक्षा कर सकता है।



हमारे शरीर के भीतर अनेक प्रकार के रसायन

हमारे मन में अपने प्रति या दूसरों के प्रति बुरा विचार या शत्रुता का भाव आते ही मस्तिष्क में एक जहरीला रसायन उत्पन्न होने लगता है जिससे शरीर सूखने लगता है तथा अनेक प्रकार की मनोकायिक बीमारियां पैदा होने लगती हैं। बीमारी का कारण केवल बाह्य कीटाणु या वायरस ही नहीं बल्कि व्यक्ति के भीतर पनप रही वैर-विरोध की भावना, कुंठा, घृणा, अवसाद और विषण्णता भी है। ये ऐसे भयंकर दीमक हैं जो हमारे शरीर को खोखला बना देते हैं। प्रेम व मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में रहने वाले लोगों का जीवन लम्बा होता है।

बनते हैं। उनमें से कुछ रसायन विष तुल्य होते हैं और कुछ अमृत तुल्य। हमारे मन में अपने प्रति या दूसरों के प्रति बुरा विचार या शत्रुता का भाव आते ही मस्तिष्क में एक जहरीला रसायन उत्पन्न होने लगता है जिससे शरीर सूखने लगता है तथा अनेक प्रकार की मनोकायिक बीमारियां पैदा होने लगती हैं। बीमारी का कारण केवल बाह्य कीटाणु या वायरस ही नहीं बल्कि व्यक्ति के भीतर पनप रही वैर-विरोध की भावना, कुंठा, घृणा, अवसाद और विषण्णता भी है। ये ऐसे भयंकर दीमक हैं जो हमारे शरीर को खोखला बना देते हैं।

जिस व्यक्ति में प्रेम व मैत्री का भाव प्रबल होता है, उसकी प्रतिरोधात्मक शक्ति अधिक मजबूत होती है तथा उसमें अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने की क्षमता का विकास होता है। खासतौर पर तनाव से जुड़ी बीमारियां, तंत्रिका तंत्र और मनोविकारों से लड़ने में प्रेम, दया व मैत्री के भाव मदद पहुंचाते हैं। प्रेम व मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में रहने वाले लोगों का जीवन लम्बा होता है। इस तरह मैत्री भावना का प्रयोग चिकित्सा की दृष्टि से भी एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

संवेदनशील हृदय व करुणाशील मस्तिष्क वाला व्यक्ति ही प्राणी मात्र के साथ मैत्री स्थापित कर सकता है। हम रोग के साथ मैत्री करें, बुढ़ाने के साथ मैत्री करें, अपने जीवन के साथ मैत्री करें और वर्तमान के साथ मैत्री करना सीखें। जिसकी इन सबके साथ मैत्री होगी, वही नकारात्मक दृष्टि से हटकर सृजनात्मकता का व उल्लास भरा सफल जीवन जी सकता है।

## कार्तिक में दीपदान

- डॉ. अनुभूति चौहान -

दीपदान बांस की खपच्चियों से तैयार टाटियों पर होता है। रचना में यह देवालय जैसा होता है लेकिन परिकल्पना नौका जैसी। इसको दीपों का जहाज मानकर जांच भी कहा जाता है। तीस तिथियों के तीस दीपक इस पर आधार से शिखर तक जलाये जाते हैं। ये दीपक आटे के बनते हैं। जलस्रोतों पर दीपदान की यह परम्परा कार्तिक व्रत की सफलता का आत्म परीक्षण है।

कार्तिक महीने में तीन प्रकार का दीपदान होता है। देवालय पर, मनुष्यालय पर और जलालय पर। जलस्रोतों के किनारे तो दीवाली पर दीये रखे जाते हैं ही, चौदस और पूर्णिमा को जल पर दीये तैराने भी जाते हैं। दीयों की यह यात्रा बहुत सुन्दर होती है।

यह दीपदान बांस की खपच्चियों से तैयार टाटियों पर होता है। टाटी बहुत सुन्दर बनाई जाती है। पनच्छों को सूत की गुंथाई से चौकोर जमाकर गुंथा जाता है 8 म 8 जैसा और फिर ऊपर देवालय जैसा ही शिखर बनाया जाता है : चार ही पनच्छियों से। रचना में यह देवालय जैसा होता है लेकिन परिकल्पना नौका जैसी। इसको दीपों का जहाज मानकर जांच भी कहा जाता है। यह दीपाधार है। तीस तिथियों के तीस दीपक इस पर आधार से शिखर तक जलाये जाते हैं। ये दीपक आटे के बनते हैं। मोटे आटे में हल्दी चूर्ण डालकर गोल-गोल दीपक बनाये जाते हैं। उसमें घी में भीगी बालियां रखी जाती हैं। इसके बाद जल में उतर कर जांच को हौले-हौले बहाया जाता है। यह कहते हुए-

दीप राजा वैकुण्ठ पधारो।

काती नहाया री काया सुधारो।।

दो पखवाड़ा, महीनों एक।

व्रत उपवास पालिया देख।।

नी डूबे नी नंदे दीप।

जल पे अगन दिखावे दीप।।

जलस्रोतों पर दीपदान की यह परम्परा जिस रूप में है, वह कार्तिक व्रत की सफलता का आत्म परीक्षण है। यह भी प्रचारित होता है कि यह हमारी समुद्र यात्रा की स्मृतियों को बताती है लेकिन समुद्र यात्रा कभी बन्द नहीं हुई। होती ही रही है। यह समुद्रवर्ती बस्तियों में ही नहीं, हर गांव में वैकुण्ठ चतुर्दशी और वैकुण्ठी पूर्णिमा पर होता है। यह स्मृतियों की अपेक्षा वर्तमान और जीवन्त है। यात्रा के लिए पथवारी पूजा अलग से होती है। यहां वंश विमान पर अन्न के दीप जलचरों के लिए आहारदान है। यह दीपदान का एक तरह से प्राणदान भी है।

जिस तरह भूमि में एक ही रस होता है, लेकिन उसमें जैसा बीज बोया जाता है, उसी के अनुसार वह उसमें रस उत्पन्न करती है उसी प्रकार अन्तरात्मा से प्रकाशित बुद्धि पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होती है। दीपक हमें यही सीख देता है।

## जमीन से जन्मी कविताएं

वरिष्ठ पत्रकार सनत जोशी की सद्य प्रकाशित पुस्तक 'नींव पर खड़ी कविताएं' उनके जीवन में बचपन से रंग-रंग

में समायी यथार्थ अनुभूतियों का शब्दगुच्छ है। मातृश्री दिवंगत श्रीमती ब्रजलता और पिताश्री पुराण केहरी दिवंगत श्री रामेश्वर शास्त्री 'दिग्गज' (जोशी) को समर्पित करते हुए उन्होंने अपने मातृ और पितृ ऋण के दायित्व को निभाने का सफल प्रयास किया है। पत्रकार यथार्थ के निकट होते हैं, अतः उनकी कविताएं कल्पना की ऊंची उड़ान, प्रेम,प्यार, की बातें नहीं करती, बल्कि सच की पथरीली धरती से कंकर कंकर में सम सामयिक विषयों, परिस्थितिजन्य समस्याओं को परखती है और उन्हें समाज के समक्ष रखकर समाधान की बातें करती हैं।

कवि ने पुस्तक में 'मेवाड़' और 'सरस्वती' की वन्दना कर अपने आस्तिक होने का परिचय दिया है। 'आदमी और कद' में तंज कसते हुए 'आदमी का' 'कद बदलता है कभी नहीं बदलता' 'आदमी' कहकर उसे पूर्णता के भाव तक पहुंचाते हैं।

जहां 'चिड़िया और बेटियां', 'आनन्द' कविता में मिश्री सी रिश्तों की मिठास घोलते हुए मार्मिक भावों को लिए कुछ सोचने पर मजबूर करती हैं वहीं,तरल अनुभूतियों से पैदा हुई पंक्तियां 'आंखों की कोरों' के तटबंधों को तोड़ देती हैं। 'पक्की सड़क', 'उजाला नजर नहीं आता', 'पता लगाया जाए', 'आग', 'कुण्ठा' आदि कविताओं में छन्दमुक्त पंक्तियों में मन की स्थित प्रज्ञता का भाव उभर कर आता है। अपनी अन्तर्निहित वेदना को उकेरते हुए 'मां' के लिए कविता में सनत जी कहते हैं-

'अकेली पाल लेगी चार बेटों को

चार बेटे नहीं पाल सकते एक मां को

मां बोझ है बेटों के लिए'

आज की एकल परिवार व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है। असाधारण सवाल साधारण मां के लिए, उभर कर परिलक्षित हुआ है। 'मैया मोरी में नहीं कुर्सी पायों', 'नजर आते हैं पैसे', मैं हास्य-व्यंग्य का पुट नजर आता है। 'जल गया हूं में', 'कुल्लागाह' में आधुनिक शिक्षा नीति की व्यवस्थाओं पर चोट करते हैं। कहीं कहीं लेखक अपनी भावनाओं के अतिरेक को भी स्वीकार करता है। अपने प्राक्कथन में सनत जी अपने आप को कवि नहीं मानते हैं। कहते हैं -

'यत्र तत्र बिखरे अक्षरों को पकड़ता हूं

शब्दों वाक्यों को जोड़ता हूं

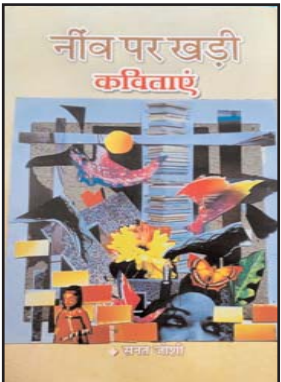
सार्थकता पाठक पर छोड़ता हूं।

हीरकणियां 'कोख', 'जुराबें' और 'दिल' गागर में सागर है। पुस्तक की अधिकांश रचनाएं नैतिक शिक्षा के सबसे बड़े विश्वविद्यालय संयुक्त परिवार की प्रणाली के इर्द-गिर्द घूमती हुई नजर आती हैं।

मानव मन में छिपे सत्य को उजागर करने वाली कविताओं में सहज भाव और सरस प्रवाह से युक्त शब्दावलियां पाठक को कहीं मननशील तो कहीं झकझोर देती हैं। संक्षिप्त पंक्तियों में संवेदनाओं की धारा बह रही है। 43 कविताओं में 'जैसा देखा वैसा लिखा' सुस्पष्ट है। राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित पुस्तक का आवरण आकर्षक है।

पुस्तक की छपाई और पृष्ठ सज्जा उत्कृष्ट है। टाइपोग्राफी का चयन अच्छा है। अतः अंकुर प्रकाशन को अनेक बधाईयां। सनतजी ने अपने सनातनी भाव को कायम रखते हुए एक एक शब्द में सकारात्मकता बुनी है। उनके पत्रकारिता के 50 वर्ष के गहन अनुभव का निचोड़ है इस पुस्तक में। इसी वजह से साहित्य जगत में इस पुस्तक का मनोयोग से स्वागत किया जायेगा। अनेक बधाईयां शुभकामनाएं।

-प्रमिला शरद व्यास



स्मृतियों के शिखर (175) : डॉ. महेन्द्र मानावत

## बचपन के खिलौने या खिलौनों का बचपन

खिलौने बच्चों का मनोरंजन ही नहीं करते, उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास भी करते हैं। ये खिलौने ऐसे होने चाहिये जिनसे बालक के स्वास्थ्य पर विपरीत असर नहीं पड़े और निरन्तर उसकी अभिरूचि बनी रहे। बच्चे को वे ही



खिलौने आकर्षित कर सकते हैं जो दिखने में सुन्दर हों अन्यथा बच्चा उन्हें छूना ही पसंद नहीं करेगा। बजाने वाले खिलौने अपनी मधुर ध्वनि से बच्चे को मोह लेते हैं। यही कारण है कि खिलौने प्रायः भीतरी ओर से पोले-खोखले होते हैं और उनमें कंकड़ आदि डाल दिये जाते हैं ताकि वे बजाये जा सकें। छोटे घुंघरू भी कई खिलौनों के साथ लगे देखे गये हैं ताकि उनकी छम्मक-छम्मक जैसी आवाज से बालक प्रमुदित होता रहे।

खिलौनों का एक गुण उनका हल्का होना है। भारी खिलौने बच्चा आसानी से नहीं उठा सकता। उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में भी बड़ी कठिनाई रहती है। ऐसा खिलौना यदि उसके शरीर के किसी अंग पर गिर जाय तो चोट लगने की सम्भावना रहती है। बच्चा स्वयं भी उसे उठाने पर गिर सकता है। खिलौने की हिलाने-बजाने के लिए भी उसका हल्का होना जरूरी है।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बच्चा हर चीज को अपने मुंह में डालने का प्रयत्न करता है। कई बार यह आदत बड़ा होने पर भी उसमें बनी रहती है। जब वह अपने मुंह में हर समय अंगुली या अंगूठा डाले रहता है और माता-पिता के लिए परेशानी का कारण बन जाता है। यों भी जन्म लेने के बाद जो पहली क्रिया बच्चा करता है, वह चूसने की क्रिया ही है। उसके सर्वप्रथम स्तनपान करने के पीछे भी यही मनोविज्ञान है। अतः



स्वाभाविक है, बच्चों के खिलौने भी ऐसे हों, जो मुंह से लगाने पर किसी प्रकार की हानि न पहुंचाये। यदि वे नोकदार होंगे तो उनसे मुंह, आंख, नाक आदि पर लगने की सम्भावना से उसे नुकसान पहुंचा सकते हैं।

दिखने-दिखाने में खिलौने अच्छे होने चाहिये। ऐसे खिलौने न हों कि जिन्हें देखते ही बच्चा डरने लग जाय। यदि ऐसा खिलौना होगा तो वह उसे छुएगा भी नहीं। डर पैदा करने वाले खिलौने बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालते हैं और विकास में बाधा पहुंचाते हैं। अक्सर देखने में आता है कि रंग-बिरंगे खिलौने के प्रति बच्चा अधिक आकर्षित होता है। ये रंग भी अच्छे लगने वाले हों और इनका मिलाप भी ऐसा हो कि एक रंग दूसरे रंग का साथ पाकर खिल उठे न कि उसे बेरंग या बेमेल बनाये।

खिलौनों का एक अच्छा गुण यह भी होना चाहिये कि वे बच्चे के मानसिक स्तर का विकास कर सकें। उसे जानने की, समझने की जिज्ञासा दे सकें। शिक्षा और सीख दे सकें। कई बार बच्चा किसी खिलौने को देखकर उसके सम्बन्ध में कई प्रकार के प्रश्न कर बैठता है।

उसके उपयोग, गुण तथा बनावट के बारे में जानकारी पाकर ही संतुष्ट होता है। अतः भरपूर मनोरंजन के साथ-साथ खिलौना बच्चे की ज्ञान

वृद्धि में सहायक हो तो उसकी गुणवत्ता और सार्थकता बढ़ जायेगी।

खिलौनों का एक बड़ा गुण यह भी होना चाहिये कि वे रोते हुए बच्चे को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। जिद पर चढ़े हुए बच्चे को अपने में रमा सकें। समस्याग्रस्त बच्चे को परेशानी से उबार सकें और बच्चा उन खिलौनों के साथ इतना घुलमिल जाय कि वह स्वयं भी उन्हीं का एक साथी खिलौना बन जाय, ताकि बच्चे के अभिभावक निश्चित होकर अपना गृहकार्य कर सकें।

उपनिषद्कालीन चरकसंहिता और काश्यपसंहिता में बच्चों के खिलौनों के सम्बन्ध में बड़े विस्तार से लिखा गया है। खिलौनों के आकार-प्रकार, रूप-रंग और गुण-उपयोग को लेकर जो रोचक तथ्य दिये गये हैं, उससे लगता है कि आज जितना बालक के रखरखाव तथा व्यक्तित्व पर ध्यान दिया जा रहा है, वैसा पहले भी दिया जाता था और परिवार एवं समाजोत्थान के लिए बालक को मुख्य घटक के रूप में देखा जाता था।

बच्चे की आयु-स्तर के अनुसार खिलौनों के बनाव, रखरखाव तथा उपयोग को ध्यान में रखा जाकर उनका निर्माण किया जाता है। प्राचीनकाल में चीनी तथा आटे के खिलौने बनते थे जिन्हें बच्चा पूरी तन्मयता के साथ खेलता था और टूट जाने पर भी उन्हें इधर-उधर फेंकने की बजाय खा जाता था। इन खिलौनों को अधिकाधिक आकर्षक तथा नयनाभिराम बनाने के लिए उन्हें रंग-बिरंगी चित्रकारी युक्त कर दिया जाता था। यों खिलौनों का उपहार तो बच्चे को जन्म से ही मिल जाता है।

उसके जन्म लेने की खबर भेजने के लिए उसके पितृघर में जो चित्रित कपड़ा भेजा जाता है, उसमें कई तरह के खिलौने चितरे होते हैं। पौन मीटर के लगभग का यह कपड़ा 'पगल्या' कहलाता है। इसमें बीचोबीच पगल्ये के रूप में दो पांव की छाप रहती है। उसके नीचे स्वस्तिक तथा फूल बनाया जाता है। स्वस्तिक नवजात शिशु की मंगल समृद्धि का प्रतीक तथा फूल उसके चहुं दिशाओं में सुगंध की तरह यश फैलने का प्रतीक है।

इस पगल्ये में बच्चे के खिलौने के रूप में पानी पीने की तूती, झूमर, चूकणी, गुल्ली-डण्डा, कणियां की जोड़ी, चकरी, कोयल, कणित्या, दड़ी, मोटर, तीन पहिये वाली गुड़वेल जैसे खिलौने मुंह बोलते, विविध रंगों से बनाये जाते हैं।

बच्चों के खिलौने किस तरह के हों, इसके सम्बन्ध में स्पष्ट है कि प्रायः वे ही खिलौने न हों जिनके द्वारा उसे अपने आसपास के जीवों की या अन्य प्रकार की महत्वपूर्ण वस्तुओं की जानकारी हो सके। जीवजगत में थलचर, जलचर और नभचर के मुख्य-मुख्य प्राणियों से सम्बन्धित खिलौने बनते आये हैं। अजीव अर्थात् जड़ पदार्थों में पहियों से जुड़े गाड़ी-रथ के खिलौने, पुतली खिलौने, गुड़िया खिलौने, गेंद खिलौने आदि मुख्य हैं।

खिलौनों से बच्चा खेलता ही नहीं है, ठीक से बैठना, चलना और बढ़ना सीखता है। इसके लिए जरूरी है कि बालक को किसी के सहारे बिछौना करके बिठा दिया जाय और उसके सामने खिलौने रख दिये जायें ताकि

वह खिलौनों से खेलता-खिलाता हुआ बहलता रहे।

हड़प्पा-मोहनजोदड़ो आदि स्थानों की खुदाई से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनसे पता चलता है कि प्राचीन समय में भी बाल मनोरंजन के लिए किसी प्रकार के खिलौने होते थे। आज के खिलौनों की जब उनसे तुलना करते हैं तो पता चलता है कि उन्हीं विशेषताओं से युक्त खिलौनों का निर्माण किया जाता था जो आज भी देखने को मिलता है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि पहियेदार खिलौनों में वैसे ही रथ और गाड़ियां थीं जो आज देखी जा रही हैं। केवल उनके स्वरूप में अवश्य बदलाव देखा जाता है जो सभ्यता के विकास और परिवर्तन का ही सूचक है।

मोटे रूप में खिलौनों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है- कपड़े, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर, गोबर, राख, कागज-कुट्टी, घासफूस, लाख, खाण्ड, धातु, टीन, तार, प्लास्टिक और इलेक्ट्रॉनिक खिलौने। बच्चों का चूँकि जीवन ही खिलौना मय होता है, इसलिए बालचाल की भाषा में बच्चे को भी खिलौना कहते हैं।

**कपड़े के खिलौने :**

कपड़े के खिलौने अपेक्षाकृत बनाने में आसान रहते हैं। इन्हें बनाने के लिए कैंची, सुई, धागा, कपड़ा और रुई हर घर में सुलभ रहती है।



दिखने तथा चलने में भी ये अन्यो से अच्छे हैं। इनके लिए अधिक कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ता। इन्हें जितना और जैसा चाहो वैसा कलामय, सौन्दर्यमय और सज्जामय बनाया जा सकता है। इन्हें बनाने में बच्चा भी अपना योग देता है और उसकी माता, बहिन, भाई आदि भी मनवांछित भूमिका अदा करते हैं।

कपड़े के खिलौनों में सर्वाधिक तो गुड़िया ही बनाई जाती थी। यह गुड़िया हर घर की शोभा भी थी। गुड़िया भी एक तरह की नहीं, एक - से -



बढ़कर-एक, सजी हुई देखने को मिलती। उसके लिए साड़ी, घाघरा, चोली बनाई जाती। साड़ी के कोर किनारी दी जाती। घाघरा भी गोटा, किनारा, सलमा, सितारे से सजाया जाता। आभूषण में नाक की नथ, कान की टोटियां, गले की हंसली, हाथ के कंगन, कमर का कन्दोरा, पांव की पायल आदि बनाई जाती। धागे वाली गुड़िया भी होती, जो धागा खींचने पर हाथ-पांव हिलाती। आज जो खिलौने नये परिवेश में मिल रहे हैं, वे उसी भांत के बदले हुए रूप हैं।

दड़ी का अर्थ गेंद से है। यह गेंद कपड़े के पुराने चिथड़ों को लपेटकर गोलाकार बनाई जाती है। इसके बाद सुई-धागे से सिलाई कर दड़ी का

रूप दिया जाता है। सुई-धागे से सिलाई नहीं करने की स्थिति में पुराने चिथड़ों को किसी कपड़े में लपेटकर दड़ी बनाई जाती है और रंग-बिरंगे धागों से भांति-भांति की भांति निकाली जाती हैं। रबड़ की गेंद की तरह ही दड़ी का आकार होता है ताकि आसानी से यह हाथ में आ सके।

दड़ी के द्वारा जो खेल खेले जाते हैं, उनमें मारदड़ी का खेल सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसमें एक बच्चा दड़ी को लेकर दूसरे को मारता है। इसमें जो बच्चा स्फूर्तिवान, तेज भागने वाला तथा निशानेबाज होता है, वही सफल हो पाता है। मारदड़ी के अलावा मंगरादड़ी, पड़ापाड़न्यो, कुंचियांदड़ी, चूटियांदड़ी, हरदड़ी, चिगदड़ी जैसे खेल खेलकर बच्चे बड़ा आनन्द लेते हैं। दड़ी को आंचलिक भाषा में डोटी कहते हैं।

डोटी का बड़ा रूप 'डोटा' होता है। यह हाथ से नहीं खेला जाकर लकड़ी के डंडे से खेला जाता है। गांवों में यह खेल प्रचलित है जो संक्रान्त पर अधिक देखने को मिलता है। जिस लकड़ी से यह खेला जाता है उसे 'गोड़ा' कहा जाता है। इसका एक नाम 'गेड़िया' भी है।

यह गोड़ा खजूर की रेशेदार लकड़ी या फिर खांखरा वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता है। यह हॉकी स्टीक जैसा होता है। गेड़िये से डोटा हॉकी की तरह खेला जाता है। इसमें भी दो दल होते हैं। संक्रान्त पर रात्रि को अंधेरे में यह डोटा जला दिया जाता है। जलते हुए डोटे को खेलते समय ऐसा लगता है, जैसे आग के गोले से खेला जा रहा है।

**गोबर के खिलौने :**

खिलौनों के रूप में गोबर के खिलौने बनाने का भी बच्चों में प्रचलन देखा गया है। ये खिलौने विशिष्ट अवसरों एवं उत्सवों पर बनाये जाते हैं। उदाहरण के लिए लड़कियां होली के लिए गोबर के विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाती हैं। उन आभूषणों से वे खेलती हैं। उनके सम्बन्ध में समूह गीत गाती हैं और मनोविनोद करती हैं। होली के ये आभूषण बड़ल्ये (बड़कुल्ले) कहे जाते हैं। होली के पन्द्रह दिन पहले से लड़कियां अपनी माता-बहिन के सहयोग से इन्हें मेहनत से बनाती हैं और सुखाकर इनकी माला तैयार करती हैं जो होली को पहना दी जाती है।

**लकड़ी के खिलौने :**

लकड़ी द्वारा निर्मित बच्चों के कई तरह के



खिलौने प्रचलित रहे हैं। खिलौने वाली यह लकड़ी बड़ी हल्की, मुलायम, गांठें रहित तथा फोरी होती है इसलिए इसके खिलौने बनाने के लिए कठोर श्रम नहीं करना पड़ता। फिर इन पर जो रंग चढ़ाया जाता है, वह भी चमकने लग जाता है। ये खिलौने विविध रंगी होते हैं और एक से अधिक रंग लिये होते हैं। चितौड़ के पास बस्सी गांव भी खिलौने बनाने के लिए जाना जाता है।

**क्रमशः**

## शब्द रंजल

उदयपुर, शुक्रवार 01 दिसंबर 2023

सम्पादकीय

## कचरादेव-घास भैरू का सम्मान

एकओर हम उस जड़ धन की पूजा करते हैं जो हमारे को समृद्धि देता है, सुख देता है और हमें लाभ-लोभ का भरपूर तोष देता है पर दूसरी ओर हम उस जड़ धन की पूजा-प्रतिष्ठा को भूल जाते हैं जो रात-दिन हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होकर हमें स्वस्थ बनाये रखता है।

यहां दीवाली के दूसरे दिन की ऐसी ही एक परम्परा है जिसे महिलाएं बखूबी निर्वाह करती पाई जाती हैं, वह है दरिद्र नारायण की शानदार विदाई की। यह दरिद्र नारायण वह कचरा है जिसे सम्मानपूर्वक विदाई दी जाकर उसकी बजाय लक्ष्मीजी को सादर आमंत्रित किया जाता है।

रंजना ने बताया कि दीवाली के दूसरे दिन ऐन सुबह उठकर हाथ में झाड़ू ले पूरे घर-आंगन को बुहार कर कचरा एकत्र कर थाली की टनटाहाट के साथ उसकी विदाई करते मन-ही-मन उच्चारण किया जाता है- 'कचरा-कचरा यहीं पे रहना, लक्ष्मी-लक्ष्मी घर पे पधारो।' यह कचरा उस जगह रख दिया जाता है जहां पूर्व में वह स्थान 'रोड़ी' निर्धारित हुआ होता है।

शारदा ने बताया कि नेपाल में भी भारत की तरह ही दीवाली का त्यौहार बड़े उत्साह से मनाया जाता है। वहां भी कचरा बुहार कर नदी में प्रवाहित करने का रिवाज है ताकि

कचरे की भी शुद्धि हो जाय।

कचरे का दूसरा नाम बगदा भी है। यह कचरा शुद्धता का प्रतीक है। कचरी, कचरालाल, रोड़ी, रोड़ीलाल, बगदी, बगदालाल नाम राजस्थान के कई हिस्सों में पाये जाते हैं। मेवाड़ में तो बहुत पहले हरिजनों में जूठे खाने को शुद्ध करने का रिवाज था। इसके लिए वे ऐंटवाड़ी माता (जूठन देवी) के समक्ष उस खाने की धूप-बत्ती कर शुद्धि करते हैं।

गांवों में घास भैरू की सवारी की उम्दा परम्परा देखने को मिलती है। वर्ष में एकबार दीवाली के बाद भैरू के प्रतीक एक बड़े से पत्थर को रस्से से बांधकर बैलों द्वारा खींचा जाकर पूरे गांव की परिक्रमा कराई जाती है जो कचरा बुहार कर स्वच्छता बनाये रखने का सन्देश देता है। घास भैरू का जगह-जगह स्वागत एवं सत्कार होता है, उन्हें नमन करते तेल की धार देते हैं। घास से तात्पर्य दूब की हरीतिमा से है जो पर्यावरण की सुरक्षा की द्योतक है। ऐसे भैरू जहां-जहां भी स्थापित हैं वे अपने-अपने चौखले को तरौताजा और वहां के निवासियों को स्वस्थ सुखी बनाये रखते हैं। आज के आधुनिक परिवेश में इन मान्यताओं में निहित गूढ़ार्थ को नहीं जानकर उन परम्पराओं की अवहेलना देखी जा रही है जो सर्वथा अनुचित ही है।

## घास भैरू की सवारी

-सुमन आदित्य-

देई में लोग सौ-सौ कोस दूर से घास भैरू की सवारी का आनन्द उठाने आते हैं। कहा जाता है कि घास भैरू मदिरा के बड़े शौकीन थे। उसी परम्परा के मुताबिक नगरभर में निकाली जाने वाली इस शोभायात्रा के दौरान उन पर मदिरा की दर्जनों बोतलें उंडेल दी जाती है पर सारी की सारी मदिरा वह प्रतिमा सोख लेती है। आज तक बड़े-बड़े बुद्धिजीवी इसका राज नहीं समझ पाये हैं जबकि ग्रामीण दर्शक इसे बाबा का चमत्कार मानते हैं।

हाड़ौती अंचल के देई कस्बे में दीपावली की भैया दूज के दिन 'घास भैरू' की सवारी निकाली जाती है। बून्दी से कोई बावन किलोमीटर दूर है देई। यह कस्बा घास भैरू की सवारी के कारण प्रसिद्ध है। मझला-सा गांव लेकिन बहुत

सबसे आखिरी में पटेलों के बैलों की बारी आती है। उनकी पूजा निपटने के साथ ही घास भैरू की सवारी शुरू हो जाती है। वातावरण में बाबा घास भैरू के जयकारे और शंख-झालर की ध्वनि गुंजायमान हो जाती है। बड़े तड़के बैलों की पदचप और डोल-ध्वनि सुनकर लोग अन्दाजा लगा लेते हैं कि सवारी कहां तक आ पहुंची है। उसी तरफ बाबा के दर्शन के लिए नर-नारियों का रैला उमड़ पड़ता है।

गांव के वयोवृद्ध किशानाजी बताते हैं कि जब घासभैरू गांव में घास भैरू को बैलगाड़ी में लाया गया था, तब इनकी मूर्ति छोटी-सी थी। यह बात पीढ़ियों पुरानी हो गई है लेकिन आज वही मूर्ति बढ़ते-बढ़ते विशालकाय हो गई है। उनकी उम्र गुजर गई देखते पर भगदड़ में गम्भीर घायल हो जाने के बाद भी बाबा की सवारी के दौरान आज तक किसी का आघात नहीं हो पाया। यही बाबा का सच्चा चमत्कार है।

घास भैरू की सवारी का एक रास्ता तय किया हुआ है। घास के दरवाजे से शुरू होकर वह बस स्टेण्ड, बचला बासा, नसियांजी चौक, कीरों के मोहल्ले में होकर शीतला दरवाजे पर पहुंचती है। वहां थोड़ी देर अपने-अपने बैलों को घास भैरू के जोतने के मामले में आपसी खेंचतान एवं रस्साकशी चलती है और वहां से रवाना होने के बाद सवारी सीधी कौलियों के मोहल्ले में से होकर पुराना थाना, लौहड़ी चौहटी होती हुई दिन ढलते-ढलते वापस घास के दरवाजे पहुंच जाती है।

सवारी का दूसरा विराम बचला बासा पर होता है। कहते हैं, यहां एक साथ भले ही एक दर्जन बैलों की जोड़ियां ही उन्हें खींचने के लिए क्यों न लगा दी जाए, घास भैरू की प्रतिमा टस से मस ही नहीं होती।

इसके पीछे यह मान्यता है कि बचला बासा के भैय उनके छोटे भाई हैं और वह आज ही के दिन साल में एकबार आपस में मिलते हैं। शीतला दरवाजे पर भी उनका स्थाई विराम है। मां शीतला भी उनकी बहिन हैं और भाई-दूज की रस्म अदायगी के लिए वह वहां कुछ देर अवश्य ठहरते हैं। तीसरा विराम अस्थाई होता है। यह उस दशा में होता है जब या तो उनका सिंहासन (काठ का सिंघाड़ा) टूट जाए या फिर वह सांकल जवाब दे जाये जिससे बैलों को बांधकर उन्हें खेंचा जाता है।

लोगों की मान्यता है कि जिस साल सिंघाड़ा टूट जाता है उस साल फसल अच्छी होती है। साल अच्छा गुजरा है लेकिन नहीं टूटने की दशा में लोगों के चेहरे लटक जाते हैं। लोक विश्वास है कि उस साल अकाल पड़ता है।

## नीम के पेड़ से गांव वालों को निमंत्रण

- डॉ. तुवक मानावत -

जमाना बदलने पर यद्यपि बहुत सारे रीतिरिवाज और मौखिक कथन व्यर्थ हुए लग रहे हैं तथापि पुराने समय से चली आ रही अनेक परम्पराएं आज भी बड़ी उपयोगी और प्रेरणास्पद हैं।

पेड़ हमारे देश में कई दृष्टियों से मनुष्य का सच्चा साथी और हमदर्द रहा है तो मनुष्य ने भी उसे सदैव हर सम्भव सहयोग देकर सुरक्षित एवं संरक्षित रखा है। अनेक वृक्ष ऐसे हैं जो दवादारु में उपयोगी सिद्ध हुए हैं तो उनकी छाल, पत्ते,

शादी समारोह और अन्य कार्यक्रमों के जो भी निमंत्रण होते हैं वे एक निश्चित स्थान पर स्थित नीम के पेड़ पर टांग दिये जाते हैं। यह वृक्ष ऐसी जगह है जहां गांव के प्रत्येक व्यक्ति का आवागमन बना रहता है। लोग आते-जाते उस निमंत्रण को पढ़कर पुनः यथास्थान सुरक्षित रख देते हैं। इस सुविधा के रहते व्यक्ति का समय और पैसा दोनों की बचत होती है। अच्छी बात यह है कि आधुनिक पीढ़ी के युवा भी इस परम्परा का पूरे मन से साथ दिये रहते हैं।

टहनियां भी कई तरह से कारज सिद्ध हुई हैं। झाड़ू-फूंक में, देवताओं के पाती चढ़ाने, मकान बनाने तथा मवेशियों के भोजन के रूप में भी वृक्षों की उपादेयता अनेक रूपों में आवश्यक बनी है वहीं वृक्ष देवताओं के निवास भी बने हैं।

वृक्षों के नाम पर देवताओं के नाम और उनकी पूजा-प्रतिष्ठा, मान-मनौती के अनेक प्रसंग गीतों, कथाओं, कहावतों तथा वार्ता-गाथाओं में वर्णित हैं। आम से आमलिया बावजी, नीम से नीमज माता, पीपल से पीपलाज माता, बड़ से बड़लिया बावजी, केला से केलेश्वर महादेव, नीम से नीमड्या बावजी, खजूर से खजूरया देव, महूड़ा से महूड़ा बावजी जैसे अनेक नाम मिल जायेंगे। बड़ पर तो नौ लाख देवियों का निवास कहा गया है।

इसका फैलाव ही बारह बीघा तक होता है और जड़ें ठेठ पाताल तक पहुंची मिलती हैं। सबसे पहले यही वृक्ष धरती पर आया। वृक्षों के फलों पर भी बड़ी विचित्र जानकारी मिलती है। गूलर का वृक्ष शरद पूर्णिमा की रात्रि को ठीक बारह बजे फूलता है। उसकी जड़वास से एक फूल निकलता है जो जिस डाली का स्पर्श करता है वह फलित होती है। यह फूल जिसके हाथ लग जाता है वह सत्ताधीश का अधिकारी होता है। रेगिस्तान में जो कटिदार पेड़ हैं वे ऊंट तथा भेड़-बकरी जनित जानवरों के लिए आवश्यक खाद्य हैं।

अब निमंत्रण जनित वृक्ष की बात करें तो राजस्थान के झालावाड़ जिले के सुनेल क्षेत्र के लालगांव के लोगों में तो वृक्ष पूरे गांव को हर प्रकार का निमंत्रण देने का सहभागी बना हुआ है। मुख्यतः शादी समारोह और अन्य कार्यक्रमों के जो भी निमंत्रण होते हैं वे एक निश्चित स्थान पर स्थित नीम के पेड़ पर टांग दिये जाते हैं। यह वृक्ष ऐसी जगह है जहां गांव के प्रत्येक व्यक्ति का आवागमन बना रहता है। लोग आते-जाते उस निमंत्रण को पढ़कर पुनः यथास्थान सुरक्षित रख देते हैं।

यह पेड़ लाल गांव के धाकड़ मोहल्ले के श्री राधा-कृष्ण मन्दिर के पास स्थित है। शादी-विवाह के निमंत्रण के अलावा कोई भागवत कथा का आयोजन हो या किसी के घर कोई मनौती प्रसंग पर रात्रि जागरण हो या फिर समूह भोज हो या कि कोई पड़वाचन, खेल-तमाश हो; ऐसे अनेक आयोजन होते हैं जिनके लिए गांव वालों को सूचना देनी होती है।

कुछ आयोजक तो ऐसे होते हैं जिनके लिए घर-घर जाकर न्यौता देना होता है। इस सुविधा के रहते व्यक्ति का समय और पैसा दोनों की बचत होती है। इसके लिए अन्य कहीं बुलावा हो तो उनके लिए सबसे पहले पंच-पंचायत को इकट्ठा करना पड़ता है और उसकी स्वीकृति के पश्चात ही घर-घर निमंत्रण देना होता है। इस सुविधा से इन सारी परेशानियों से मुक्ति मिल जाती है।

गांव के लोगों का आपसी सौहार्द तथा भाईचारा बना रहे, इसके लिए सुबह-शाम छह बजे से नौ बजे तक प्रतिदिन चौपाल लगती है। इसमें प्रत्येक परिवार से एक-न-एक प्रतिनिधि की उपस्थिति रहती है पर यदि कारणवश किसी की उपस्थिति नहीं हो पाती है तो पास वाले उसे घर जाकर निर्णय की जिम्मेदारीपूर्वक सूचना देते हैं। यों लाल गांव में 255 परिवार बसे हुए हैं। अच्छी बात यह है कि आधुनिक पीढ़ी के युवा भी इस परम्परा का पूरे मन से साथ दिये रहते हैं।

सामन्तीकाल में हर ठिकाने में स्थानीय जागीरदार का वर्चस्व रहता। उसे कोई भी समूह-सूचना देनी होती तो सैना डूंडी पिटकर मोहल्ले-मोहल्ले जाकर अपनी जोशीली वाणी द्वारा राजाज्ञा की सूचना मुहैया करता था। जो भी हो, जमाना कैसा भी हो पर संगठित रूप में यदि सभी मिलकर उसकी पालना करते हैं तो सबके लिए सहज स्वीकार्य होनी चाहिये।

कांकरोली ( ह. सं. )। कवि, कथाकार फतहलाल गुर्जर 'अनोखा' नहीं रहे



कांकरोली ( ह. सं. )। कवि, कथाकार फतहलाल गुर्जर 'अनोखा' का 84 वर्ष की उम्र में 29 नवंबर 2023 को लंबी बीमारी के बाद निधन हो गया। वे हिंदी, बृज और राजस्थानी तीनों भाषाओं में सृजन करते थे। उनकी अब तक लगभग 50 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें पन्नाथाय पर उनका शोधकार्य बहुचर्चित रहा। वे अपने मधुर कंठ से बृजभाषा और मेवाड़ी में समसामयिक विषयों पर कविताएँ सुनाकर समां बांध देते थे। 1966 में उन्होंने कुछ मित्रों के साथ मिलकर द्वारकेश राष्ट्रीय साहित्य परिषद का गठन किया था। इस संस्था द्वारा प्रतिवर्ष स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर के साहित्यकारों को लगातार सम्मानित किया जाता रहा है। वे मिलनसार, हंसमुख और लोकप्रिय शख्सियत थे। 'अनोखा' का जाना साहित्य के लिए अपूरणीय क्षति है।

- माधव नागदा

# आदिम रागों में अल्हड़ रंगों के सुर

-डॉ. कहानी भानावत-

आदिवासी कहीं के हों, अपनी आदिम गंधी संस्कृति, जीवनधर्मिता तथा संस्कारों में आज भी अपने उसी परम्पराशील लोक के गहवारे बने हुए हैं। वे प्रकृति के मौन किंतु अविरल साहचर्य के सहवासी हैं। धर्म-कर्म, अध्यात्म तथा परमेश्वर की सत्ता-महत्ता के कर्मशील पुरुषार्थी हैं। अपनी निजता को उस परम सत्ता में समर्पित किये अपने को सर्वथा अज्ञान बनाये हैं।

प्रकृति के पदचाप के साथ उनकी अबोली बोली, विमल वाणी तथा सहमे-सहमे सबद उच्चरित होते हैं। उनकी भिन्नता की सारी शक्ति उनके देवता के प्रति धारणा, आस्था तथा अस्तित्व के साथ अलौकिक बनी हुई है। उनकी जबान के सुर से अधिक सुर-स्वरों का लालित्य उनके बाजों से बजता, सजता, ध्वनित होता है। उनमें प्रकृति और पुरुष का उन्मीलन उनके आत्मानुशासन को मौन मुखरित किये मिलता है। वहाँ सबकुछ वाचिक है। सामूहिक है। लोक की मनीषा अपरम्पार और

अपौरुषेय है। इस मनीषा ने अपनी आवष्यकता के अनुरूप लोकवाद्यों की संरचना कर सृष्टि के विधि-विधान को समवेत किया। लोकमंगल को सहिष्णु बनाया तथा ताल-लय की तपन-लपन से राग-रंग देने का सद् भगीरथ प्रयास किया। राजस्थान की रज भूमि ने अनेक अनूठे और अनुपम वाद्यों से लोकलीला को संगी बनाया। इस कारण वे वाद्य ही उस विधा की विशिष्ट पहचान बने।

पाबूजी की पड़ के साथ बजनेवाला रावणहत्था, देवनारायण की पड़ गाथिकी को उदात्त माधुर्य देता जंतर, नवरात्रा में भारत गाथिकी को हाक देता ढाक, होली को हलरावण देता चंग जैसे वाद्य अपने रंग में बेमिसाल हैं। रेगिस्तान के नड, खड़ताल, मुरला, सुरिदा, मटकी जैसे वाद्यों ने पूरी दुनिया को सुरभित बनाया है। आदिवासियों में प्रचलित वाद्यों का अंदाज उनके अल्हड़पन की संजीदगी का शिखर बना हुआ है।

डॉ महेन्द्र भानावत का उपर्युक्त कथन राजस्थान के आदिवासियों पर पूर्णतः सटीक बैठता है। यहाँ के आदिवासियों में भीलों का सर्वाधिक बसेरा मेवाड़ क्षेत्र में रहा। सामंतीकाल में यह राजपूताने का एक भाग था। जब उदयपुर इसकी राजधानी था तब मेवाड़ राज्य को उदयपुर राज्य से भी संबोधित किया जाता था।

आजादी पूर्व का मेवाड़ राज्य देखें तो इसके पूर्व में बूंदी, कोटा, इन्दौर, ग्वालियर, टोंक तथा प्रतापगढ़ के राज्य थे जबकि पश्चिम में सिरोही, जोधपुर तथा खेरवाड़ा के इलाके थे। उत्तर में अजमेर-शाहपुरा तथा दक्षिण में बांसवाड़ा-झुंजरपुर की रियासतें थीं। उत्तर-पूर्व में जयपुर के इलाके तथा दक्षिण पश्चिम में विजयनगर और ईडर के इलाके थे।

आजादी के बाद राजपूताना राजस्थान बना जिसमें उस काल की सभी 19 रियासतें सम्मिलित की गईं। भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान के आदिवासियों को चार मंडलों में विभक्त किया जा सकता है। ये मंडल निम्नांकित हैं-

(1) प्रथम मंडल में राजस्थान राज्य के दक्षिण क्षेत्र के जिले सम्मिलित हैं जिसमें उदयपुर, चित्तौड़गढ़, राजसमंद, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा तथा झुंजरपुर हैं। ये छहों जिले उदयपुर संभाग के अन्तर्गत हैं। इनमें भील, डामोर, तथा कथौड़ी बसे हुए हैं।

(2) दूसरा मंडल सिरोही तथा पाली जिले लिये है। इस मंडल में गरासिया नामक आदिवासी निवास करते हैं।

(3) तीसरे मंडल में जयपुर, सीकर तथा अलवर जिले हैं जिनमें मीणा जाति का बहुमत है।

(4) चतुर्थ मंडल में बूंदी, कोटा, झालावाड़, तथा टोंक सम्मिलित है। इनमें भील तथा मीणों की मिलीझुली बस्ती है। कोटा जिले की किशनगढ़ तथा शाहाबाद तहसील में मुख्यतः सहरिया

आदिवासी निवास करते हैं।

सृष्टि के उद्भव को लेकर मनुष्य ने अनंत, अन्तहीत कल्पनाएँ कीं किन्तु कोई प्रामाणिक इतिहास सम्मत खोजखबर नहीं दे पाया। अपनी कल्पना की बेनपती डोर से जितनी डींगें हांक सकता था, उसने हांकी। जितने मिथक घड़ सकता था, उसने घड़े।

जितनी कल्पनाएँ वह कर सकता था, उसने कीं किंतु अंत में सभी ने उस परमशक्ति परमात्मा को सर्वस्व माना जिसने सृष्टि की रचना की और अनेकानेक जीवों का अस्तित्व दिया। मनुष्य उन्हीं में से एक जीव के रूप में, अन्य जीवों की तरह था जो कालान्तर में अन्त्यों से भिन्न विकास के सोपान पर डग भरता ज्ञानेंद्रिय बना और परमात्मा के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापित हुआ जिसने सत्ता-शासन का सूत्र थामा।

लेकिन सीखा प्रकृति के परिवेश से ही। समुद्र की शांत उताल तरंगों से, नदी नालों की कलकल से,

उफनते गिरते झरने की छनछनाहट से, पशुओं की पुकार से, पक्षियों की चहचहाहट से, बादलों की गर्जन से, बीजली की कड़कहाहट से, मोर पपीहा कोयल की कहकहार से, बाँसों की टक्क से, पत्तों की फड़फड़ाहट से, हवा की सनसनाहट और ऐसे ही अनेकानेक कथन, टकराहट, सिहरन तथा सुगबुगाहट देने वाली ध्वनियों से।

वनचारी वनवासियों ने ही प्रकृति के उपकरणों का उपयोग कर अपने साथ प्रकृति को भी अधिक रंगीन तथा रूपांकित किया है। इसके लिए उसने प्रकृति के ही विविध उपादान खोजे और उनसे स्वर संधान किया। वाद्यों के रूप में उनकी संगीतयात्रा की खोज बड़ी अजूबी तथा उतनी ही दिलचस्प कहानी है। विकास के इन



पड़ावों का कौन साक्षी रहा, कुछ कहा नहीं जा सकता। आदमी आता-जाता रहा। इतिहास बनता-बिगड़ता रहा। सब कंठ-दर-कंठ, स्मृति-दर-स्मृति के सहारे ही जाने-आने वाले को संभालते रहे। यही सार संभाल हमारी विरासत है, जो अब भी हमारे जीवनचक्र के आनंद-उल्लास का हिस्सा बनी हुई है। उसी हिस्से के सहभागी हमारे वाद्य हैं। मोटे रूप में वाद्यों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

(1) फूंकवाद्य जो फूंक से बजाये जाते हैं। ये नलीदार होते हैं जो गले की फूंक से स्वर देते हैं। इन्हें सुशिर वाद्य भी कहते हैं।

(2) तार वाद्य जो मुख्यतः पीतल, तांबा अथवा लोहे के तारों की झनझनाहट से स्वर देते हैं। कहीं तार की जगह पशु की तांत, घोड़े के बाल भी काम में लिये जाते हैं। तार की मुख्यता के कारण ये तत वाद्य भी कहलाते हैं।

(3) चर्म वाद्य वे होते हैं जिनका मुख अथवा घेरा चमड़े से मढ़ा होता है। ये वाद्य हाथ की थाप, अंगुलियों, लकड़ी की डंडियों या फिर बांस की चपकियों के घात से बजाये जाते हैं। इन्हें अवनद्ध वाद्य भी कहते हैं।

(4) धातु वाद्य जो कांसे, पीतल, लोहे की विविध धातु के बने होते हैं। इन्हें परस्पर आघात से, लकड़ी की डंडियों से या फिर हिलाडुलाकर बजाया जाता है।

यह निर्ववाद कहा जा सकता है कि आदिम समाज में ही सबसे पहले वादन का सिलसिला

प्रारंभ हुआ। मनुष्य को प्रकृति में जो कुछ चर्च-चर्च, टर्-टर्, झन-झन, छन-छन, टक-टक, खट-खट, सर-सर जैसी ध्वनियों का बोध हुआ, उसने उनकी नकल करना और अपने में उनकी नकल निकालना शुरू किया फिर धीरे-धीरे विकसित होती प्रक्रिया ने कोई माध्यम अपनाया।

इनमें बांस, कोई लकड़ी, पत्थर और फिर सींग को बजा कर कोई ध्वनि दी। फूंक का माध्यम छिद्रों का अविचर्ता बना तथा बढ़ती जिज्ञासा वृत्ति ने धीरे-धीरे विविध उपादानों का सहारा लिया। इसमें वर्षों लगे तब जाकर विविध धातुओं, चर्म, आंत-तांत और प्रकृति के अन्यान्य उपादयों का सहारा लेकर उसने अपनी खोजक वृत्ति की लगन तथा लालसा से उसमें कुछ जोड़ा तोड़ा तराशा।

आज जितने की आधुनिक वाद्यों की बहार देखने को मिलती है वे आदिवासियों में प्रचलित



वाद्यों की ही दृढ़ भित्ति का आधार लिये लगेते हैं। इस दृष्टि से यदि हम राजस्थान की आदिवासी जातियों में प्रचलित वाद्यों का अध्ययन करें तो हमें उनकी खोजक बुद्धि तथा ज्ञान पिपासा पर आश्चर्य ही होगा।

यह भी कम अचरज की बात नहीं है कि किसी भी वाद्य को लें, उसके मूल में जो कथा किवदंती, मिथक तथा कहावत छिपी है उसके उत्स किसी न किसी देवत्व शक्ति से जुड़े मिलते हैं। तब यह तथ्य गलत नहीं होगा कि वह देव-पुरुष ही है जिसने मनुष्य को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में वह ज्ञान उपलब्ध कराया जिसके सहारे वह विविध वाद्यों के निर्माण, वादन तथा ध्वनियों के साथ राग-रागिनियों के सृजन का माध्यम बना।

उदाहरण के लिए भीलों में प्रचलित मांदल, ढोल, थाली, हरणाई, कुंडी वाद्य को लें। उनमें प्रचलित गवरी नामक सर्वाधिक लोकप्रिय अनुष्ठानिक नृत्य-रूप की प्राचीनता के सूत्र पुराणों में भी मिलते हैं। शिव तथा पार्वती ने गवरी का मंडल मृत्युलोक में भीलों के माध्यम से बनाया जो सृष्टि के प्रारंभिक स्वरूप का प्रामाणिक दस्तावेज है।

मांदल मां म्हा अर्थात् महादेव शिवजी के दल की प्रतीक है। शिवजी ने ही सबसे पहले उसे तैयार कर शेर के चमड़े से उसकी मढ़ाई की। उसको बजाकर अपने दल अर्थात् गण के सभी लोगों को एकत्र किया। उसे अभिमंत्रित कर सभी को नुगरा शक्तियों से, राक्षसों से, बुरी आत्माओं से, प्रेत-पिशाचों से मुक्त किया। गवरी में इसे बजाने वाला मांदलिया मंत्र-सिद्धि का ज्ञातक होता है। वह गवरी के खेल के दौरान सभी खेलों, खिलाड़ियों को प्रेतात्माओं से बचाये रखता है।

डॉ. भानावत ने इस नृत्यानुष्ठान पर सर्वप्रथम समग्रतः शोधानुसंधान किया और लिखा कि खेल के दौरान कईबार जब रमती गवरी पर मूठ आती दिखी तो मांदलिया ने न केवल खेल रमणियों की रक्षा की अपितु गवरी को भी बड़ी होशियारी से बचाये रखा।

भीलों में प्रचलित एक गाथा के अनुसार नौ लाख देवियों ने नवरात्रि का उत्सव मनाया तब इस वाद्य की रचना की गई। देवियां उसकी ताल पर जब नृत्य कर रही थीं तब किसी भील युवक की निगाह पड़ गई और वह युवक भी उसमें निमग्न हो अपने ही पट्टों पर हाथों की थापें देता नाचता रहा। देवी अंबा उसके नृत्य पर मोहित हो गई और उसने उसे मांदल थमा दी। वह युवा 'मां ने दी, मां ने दी' कहते वहाँ से पूरे चोखले में घूमता रहा तब से उसका नाम मां-दल पड़ गया।

हारंगी शास्त्रीय वाद्य सांरगी का सरलतम रूप है। कामडिया भील इसके सहारे रामदेव बाबा तथा जरगाजी की आराधना में रात-रात भर भजन गाते हैं। भीलों में भजन के समय संगत वाद्य के रूप में यह तार वाद्य प्रारंभ में एक तार से शुरू हुआ इसलिए एकतारा कहलाया फिर प्रयोगधर्मी मानुष ने एकतार की जगह दो तार जोड़े तो दो तारा नाम पड़ा। तीन तार से तीतारा, चार से चोतारा और छह तार के सम्मिलन से छतारा वाद्य बना।

तार लोहे के बाद में लगे। घोड़े के बालों की सहायता से गज बनाया जाता है। उसकी रगड़ द्वारा ध्वनि निस्त होती है। बाड़मेर की ओर के भील भगत केनरा वाद्य के सहारे भजनानंदी बन रेगिस्तान के कण-कण को अध्यात्म से जोड़े रहते हैं। केनरा दो तूम्बों का जुड़ाव लिए दो तारी वाद्य होता है। इसे देखकर तंदूरा तानपुरा धन्तुरा याद हो आता है।

पशु-पक्षियों की विविध गूंजों, हूँकारों तथा ध्वनियों को सुनकर वाद्यों के सहारे वैसी ही आवाज निकालने के लिए आदिवासी जन ने किस तरह, कितने प्रयोगों द्वारा अन्ततः सफलता प्राप्त की, इसकी कल्पना ही कितनी रोमांचक तथा अचरजकारी है।

इन्हीं ध्वनियों को पाकर उसने खूंखार तथा भयाक्रांत जानवरों को अपना दोस्त बनाया और अपनी रक्षा के

लिए भी उनका उपयोग किया। ऐसा ही एक वाद्य जहाजपुर की ओर निवास करने वाले मीणों में मिलता है। इसका तो नाम ही नार हूँकारणी है। नार अथवा शेर की हूँकार अर्थात् दहाड़ देने के कारण इस वाद्य का यह नाम पड़ा। फसल की रक्षा के लिए इस वाद्य का विशेष उपयोग किया जाता है।

इसके निर्माण के लिए एक बड़े मटके के मुँह पर बकरे की खाल की पूड़ी मढ़ दी जाती है। पूड़ी के बीचोबीच छेद कर खोल के नीचे मोरपंख की गुंडी लगा दी जाती है। वादक इसे दोनों पैरों से

पकड़, मोरपंख के खोल को गीलाकर डोरी को खींचता है कि इससे जोर की गर्जना निकलने लगती है। यह गर्जना ही उन जीवों को डराने, धमकाने, भगाने, भयदेने का काम करती है जिससे फसल आबाद बनी रहती है।

गरासियों को आदिवासी अध्येता डॉ. अर्जुनसिंह शेखावत ने 'भाखर रा भोमिया' कहकर

संबोधित किया। इसी नाम से उनका एक वृहद् ग्रंथ भी प्रसिद्ध है। हाल ही में इसका ट्राइबल कल्चर ऑफ गरासिया नाम से शिव मृदुल द्वारा किया सशक्त एवं संश्लिष्ट अनुवाद आया है। डॉ. महेन्द्र भानावत ने गरासियों को 'कुंवारे देश का आदिवासी' मानते हुए इसी नाम से एक पुस्तक 1989 में प्रकाशित की। उन्होंने लिखा कि भाखर का अर्थ पहाड़ तथा देवता भी है। यही भाखर गरासियों में घोड़ा बावसी के नाम से भी जाना जाता है। आबू से पूर्व की ओर जो पहाड़ियाँ फैली हैं उनमें 24 गांव बसे हुए हैं। यही क्षेत्र भाखर पट्टा कहलाता है जिसमें गरासिया जाति निवासरत है।

गरासियों के प्रमुख वाद्यों में कुंडी, वांहेली तथा घोसिया हैं जबकि सहरियों में धूमधड़ाक, शिल्पा, मुश्की, ताशे मुख्यता लिये हैं। मुश्की का विकसित रूप मशक में देखा जाता है। धूमधड़ाक नवरात्रा में लाये जाने वाले स्वांगों में चार चांद लगा देता है। आदिवासियों में सहरियों जैसे स्वांग दृश्य अन्यत्र नहीं मिलेंगे। उनकी चित्रकारी के रंग-रूपों की छविमान दृश्यावलियां भी बड़ी मोहक एवं अनूठी हैं।

इसी प्रकार कथौड़ियों के वाद्यों में तारपी, पावरी, टापरा, थालीसर, गोरडिया अपने में कई अदभुतता लिये हैं। पावरी फूंक वाद्य है। बांसुरी अलगोजा इसी की भावभूमि की देन कहे जा सकते हैं। सूखी हुई लौकी की खोल के नीचे छिद्र कर पतले बांस की दो नलियों द्वारा तारपी जैसा वाद्य अपनी ध्वनि में पूंगाड़ी की याद दिला देता है। छिद्र के बाहर गाय के सींग का टुकड़ा और विभिन्न हिस्सों को मोम से जोड़ने की कला कोई इनसे सीखे।

- शेष पृष्ठ सात पर

बाजार / समाचार

**सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग के संयुक्त निदेशक महेशचन्द्र शर्मा सेवानिवृत्त**

उदयपुर (ह. सं.)। सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग के संयुक्त निदेशक महेशचन्द्र शर्मा को उनकी अधिवार्धिकी आयु पूरी होने पर गुरुवार को भावभीनी विदाई दी गई। विभाग के निदेशक पुरुषोत्तम शर्मा ने महेशचन्द्र शर्मा को साफा व माला पहनाकर और मोमेन्टो भेंट कर सम्मानित किया। निदेशक श्री शर्मा ने



महेशचन्द्र शर्मा को अनुशासित और कार्यकुशल अधिकारी बताते हुए कहा कि वे राजकीय सेवाकाल में सदैव मृदुभाषी एवं सरल स्वभाव के रहे।

विभाग के वित्तीय सलाहकार सुभाष दानोदिया एवं अतिरिक्त निदेशक

श्रीमती अलका सक्सेना ने श्री शर्मा के कार्यों एवं व्यवहार की प्रशंसा की। महेशचन्द्र शर्मा ने सभी का आभार प्रकट किया। गजाधर भारत ने काव्यपाठ के माध्यम से श्री शर्मा के कार्यों एवं कार्यकाल की जानकारी दी, जबकि यंग इंटरनल सागर प्रजापति ने श्री शर्मा को स्केच पेंटिंग भेंट की।

इस अवसर पर उपनिदेशक नर्मदा इंदौरिया, सूचना एवं जनसम्पर्क कर्मचारी संघ के अध्यक्ष गोपाल स्वरूप पाठक, वरिष्ठ उपाध्यक्ष अनिल सोनी सहित विभाग के अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी मौजूद रहे। उल्लेखनीय की महेशचन्द्र शर्मा गत 40 वर्षों में जनसंपर्क विभाग के महत्वपूर्ण पदों पर अपनी सेवाएं दे चुके हैं। अपने कार्यकाल के दौरान श्री शर्मा को उदयपुर, राजसमंद, सिरौही, और डिस्कॉम अजमेर में सम्मानित भी किया गया।

**एक्सॉनमोबिल ने मोटरस्पोर्ट्स को आगे बढ़ाया**

उदयपुर (ह. सं.)। एक्सॉनमोबिल इस वर्ष इंडियन रेसिंग फेस्टिवल को पावर देकर भारत के तेजी से बढ़ते मोटरस्पोर्ट्स सेक्टर को ऊपर उठा रहा है, जिसमें देश में पहली बार एफ 4 इंडियन चैंपियनशिप और चेन्नई के मद्रास इंटरनेशनल सर्किट (एमआईसी) और नए फॉर्मूला रेसिंग सर्किट (एफसीआर) में आयोजित होने वाली इंडियन रेसिंग लीग (आईआरएल) का दूसरा सीजन शामिल है। यह वर्ष पहली बार भारत और दक्षिण एशिया में शहर के केंद्र में द्वीप मैदानों के आसपास स्थित एफसीआर में रात की रेस का एक रोमांचक कैलेंडर शामिल है। यह रेसिंग प्रमोशन प्रा. लि. (आरपीपीएल) के साथ एक्सॉनमोबिल की लगातार दूसरे वर्ष की साझेदारी का हिस्सा है, जो देश में मोटरस्पोर्ट्स की लोकप्रियता और पहुंच को बढ़ाने और इसे सभी रेसर्स के लिए अधिक किफायती बनाने की अपनी प्रतिबद्धता से प्रेरित है।

आईआरएल के साथ साझेदारी का जश्न एमआईसी, चेन्नई में आईआरएल प्री-सीजन टेस्ट में मनाया गया। इस कार्यक्रम में ड्राइवरों ने मोबिल1 उत्पादों का प्रदर्शन किया। इसके अलावा मोबिल 1 ब्रांड को पूरे स्थल पर प्रमुखता से प्रदर्शित किया गया। उत्कृष्ट इंजन प्रदर्शन- जो रेसिंग के लिए केंद्रीय है, उसके लिए असाधारण ट्रेक-रिकॉर्ड वाला मोबिल1 रेसर्स को आत्मविश्वास दे रहा है। भारत की पहली फ्रैंचाइजी आधारित मोटरस्पोर्ट्स लीग, आईआरएल सीजन 2 शहर आधारित सात टीमों को एक साथ लाती है। प्रतिस्पर्धी मोटर खेल में विशिष्ट मानक लाते हुए भारत की एकमात्र चार पहिया रेसिंग लीग और दुनिया की पहली लिंग के प्रति तटस्थ रेसिंग चैंपियनशिप आईआरएल ने मोटर रेसिंग में पहले वर्ष से ही एक अनूठा स्थान बनाया है। रेसिंग के प्रति उत्साही लोगों के लिए प्रदान किए जाने वाले उत्साह के अलावा, आईआरएल कार मैकेनिक्स और मैकेनिकल इंजीनियरिंग के छात्रों के लिए इंटरशिप कार्यक्रमों के माध्यम से मोटरस्पोर्ट्स के लिए प्रतिभा की एक नई पीढ़ी का पोषण भी करता है।

**एचडीएफसी बैंक को मिले दो पुरस्कार**

उदयपुर (ह. सं.)। एचडीएफसी बैंक को प्रोफेशनल वेल्थ मैनेजमेंट (पीडब्ल्यूएम) द्वारा आयोजित ग्लोबल प्राइवेट बैंकिंग अवार्ड्स 2023 में दो पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। इन पुरस्कारों में शामिल हैं- निजी बैंकों की शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए सर्वश्रेष्ठ निजी बैंक (एशिया) एवं विकास रणनीति के लिए निजी बैंक (एशिया)। इसके अतिरिक्त, बैंक को भारत में सर्वश्रेष्ठ निजी बैंक की श्रेणी में काफी सराहना भी मिली। फाइनेंशियल टाइम्स द्वारा प्रकाशित दुनिया का अग्रणी वैश्विक व्यापार प्रकाशन प्रोफेशनल वेल्थ मैनेजमेंट (पीडब्ल्यूएम) निजी बैंकों और उन क्षेत्रीय वित्तीय केंद्रों की विकास रणनीतियों का विश्लेषण करने में माहिर है जिनमें वे काम करते हैं। ग्लोबल प्राइवेट बैंकिंग अवार्ड्स ने खुद को दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित निजी बैंकिंग पुरस्कारों के रूप में मजबूती से स्थापित कर लिया है और अब अपने पंद्रहवें वर्ष में हैं। प्रविष्टियों का मूल्यांकन उत्तरी अमेरिका, एशिया, यूरोप और मध्य पूर्व में स्थित प्रतिष्ठित उद्योग व्यायाधीशों के एक स्वतंत्र पैनल द्वारा किया जाता है।

**सफेद मोतियाबिन्द का सफल उपचार**

उदयपुर (ह. सं.)। पेसिफिक इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, पिम्स हॉस्पिटल उमरड़ा में चिकित्सकों ने दस महीने के बच्चे का सफेद मोतियाबिन्द का सफल उपचार किया है। चैयरमेन आशीष अग्रवाल ने बताया कि नेत्र विभाग ने एक नई उपलब्धि हासिल की है। इसमें नेत्र विभाग के प्रमुख फेको सर्जन डॉ. नितिन सिंह और उनकी टीम की डॉ. संध्या नागदा, डॉ. श्रेया ने दस महीने के बच्चे का सफल मोतियाबिन्द निकाला है जो कि एक जटिल ऑपरेशन है। इसमें खराब लेंस के साथ लेंस की झिल्ली का कुछ हिस्सा भी निकालना पड़ता है। बच्चा पैदा होने के बाद कुछ भी नहीं देख पा रहा था पर अब दोनों आंखों के ऑपरेशन के बाद देखने लगा है।



**जिंक फुटबॉल अकादमी बनी सीबीएसई नेशनल्स की चैंपियन**

उदयपुर (ह. सं.)। डीएवी एचजेडएल स्कूल जावर माईस का प्रतिनिधित्व करने वाली जिंक फुटबॉल अकादमी ने केरल में आयोजित सीबीएसई अंडर-19 नेशनल फुटबॉल टूर्नामेंट में ऐतिहासिक जीत हासिल कर ट्रॉफी जीतने वाली राजस्थान की पहली टीम बन गई। हिंदुस्तान जिंक की सीएसआर पहल जिंक फुटबॉल अकादमी, 40 टीमों के टूर्नामेंट में, जिसमें सऊदी अरब, कुवैत, कतर और बहरीन की पांच विदेशी स्कूल टीमों और मिनर्वा पंजाब और बाईचुंग भूटिया फुटबॉल स्कूल जैसी प्रसिद्ध भारतीय अकादमियां जैसे मजबूत दावेदार शामिल थे, केवल 8 मैचों में 29 गोल दाग के विजयी बनी।



डिफेंडर मोहम्मद कैफ को टूर्नामेंट का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी चुना गया। फारवर्ड जंगमिनथांग हाओकिप 8 गोल के साथ टूर्नामेंट के शीर्ष स्कोरर रहे, जिसमें

का हमारा लक्ष्य फलदायी हो रहा है। हम जमीनी स्तर पर फुटबॉल में अपने काम को आगे बढ़ाने, युवा प्रतिभाओं को तैयार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं जो राजस्थान और भारत को और अधिक गौरव दिला सकें।

डीएवी एचजेडएल स्कूल जावर माईस के प्रिंसिपल हरबंस ठाकुर ने कहा कि सीबीएसई नेशनल्स में हमारी जीत न केवल खिलाड़ियों के समर्पण और कौशल को दर्शाती है, बल्कि इस प्रतिष्ठित ट्रॉफी का दावा करने वाली राजस्थान की पहली टीम के रूप में एक मील का पत्थर भी है। मैं जिंक फुटबॉल एथलीटों के लिए खुशी और गर्व से अभिभूत हूँ जिन्होंने सच्ची खेल भावना और टीम वर्क का प्रदर्शन किया है।

पंजाब के अनीस स्कूल के खिलाफ हैट्रिक शामिल था। इसका प्रतिनिधित्व मिनर्वा अकादमी के खिलाड़ियों ने किया था।

हिन्दुस्तान जिंक के सीईओ अरुण मिश्रा ने कहा कि जिंक फुटबॉल अकादमी के लिए इस महत्वपूर्ण उपलब्धि से राजस्थान के गौरवशाली फुटबॉल के दिनों को पुनर्जीवित करने

का प्रदर्शन किया है।

जिंक फुटबॉल अकादमी अब एआईएफएफ यूथ लीग और रिलायंस फाउंडेशन डेवलपमेंट लीग जैसे आगामी प्रमुख टूर्नामेंटों की तैयारी करेगी।

**गीतांजली में लैप्रोस्कोपिक फैलोशिप कांफ्रेंस आयोजित**

उदयपुर (ह. सं.)। गीतांजली हॉस्पिटल में तीन दिवसीय लैप्रोस्कोपिक फैलोशिप कांफ्रेंस का आयोजन सर्जरी विभाग द्वारा किया गया। उद्घाटन गीतांजली मेडिकल कॉलेज के एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर अंकित अग्रवाल ने किया।

ऑर्गनाइजिंग चेयरमन डॉ. अजय चौहान एवं सेक्रेटरी डॉ. मोहितकुमार

दूसरे दिन प्रख्यात लैप्रोस्कोपिक सर्जन द्वारा सारे ऑपरेशन लाइव दिखाये गये।



कांफ्रेंस में दूरबीन द्वारा की जाने वाली लैप्रोस्कोपी एवं एंडोस्कोपी सर्जरी के बारे में देश के निष्णात सर्जन द्वारा लेक्चर्स लिए गए और मास्टर वीडियो दिखाए गए।

बड़गुर्जर ने बताया कि देश के अलग अलग हिस्से से आए डेलीगेट्स को मास्टर वीडियो एवं लेक्चर्स द्वारा लैप्रोस्कोपी से होने वाले सभी ऑपरेशन सिखाए गए। फैलोशिप के

कांफ्रेंस में देश के विभिन्न राज्यों व शहरों के लगभग 125 सर्जन और 50 पोस्ट ग्रेजुएट ने भाग लिया। कांफ्रेंस में डॉ. एफ. एस. मेहता, डॉ. संगीता गुप्ता, डॉ. संजीवकुमार टुडु, डॉ. संजीव अग्रवाल, डॉ. सुमन परिहार, डॉ. जे. एल. कुमावत, डॉ. कमलकिशोर बिश्नोई, डॉ. मित पटेल, डॉ. उर्मिल लबाना और डॉ. पार्थ भूत का उल्लेखनीय योगदान रहा।

**300 से ज्यादा दिव्यांगों के हाथ-पैरों का लिया मैजरमेंट**

उदयपुर (ह. सं.)। नारायण सेवा संस्थान द्वारा आयोजित नि: शुल्क नारायण लिम्ब मेजरमेंट शिविर में बंगाल सरकार के परिवहन मंत्री स्नेहाशीष चक्रवर्ती दिव्यांगों से मिलने पहुंचे। उन्होंने दुर्घटना में हाथ-पैर खो चुके बंगाल के हावड़ा, नदिया, हुगली, वर्धमान, वीरभूमि, मुशीदाबाद, सिलिगुड़ी, सहित कई जिलों से आए दिव्यांगों और उनके परिजनों से भेंट की। मंत्री ने कहा कि नारायण सेवा संस्थान की मानवता के लिए सेवा अभिन्नदनीय है। प्रारम्भ में संस्थान के प्रवक्ता भगवानप्रसाद गौड़ और रिलेशन मैनेजर राकेश शर्मा ने मुख्य अतिथि परिवहन

मंत्री, स्पेशल गेस्ट बंगाल मैन फॉरम की अध्यक्ष नंदिनी भट्टाचार्य, समाजसेवी रामअवध जयसवाल,



विश्वनाथ जयसवाल, कमलेश दिवेदी, विमल सुराना का मेवाड़ी पगड़ी, दुपट्टा, प्रतिक चिन्ह और गुलदस्ता भेंट कर अभिनंदन किया। इस दौरान आयोजन में अनुदान करने वाले

दाताओं का सम्मान किया गया। वोलियन्ट्री सेवा सहयोगी - श्री भूमि विकास मंच के अध्यक्ष डी. सी. भण्डारी और उनके सदस्यों को भी सम्मानित किया गया। शिविर संयोजक नरेन्द्रसिंह ने बताया कि 410 दिव्यांग रोगी शिविर में आये जिनमें 255 दिव्यांग का कृत्रिम अंग के लिए चयन कर उनका मेजरमेंट लिया गया तथा 50 का केलिपर्स व 16 को ऑपरेशन हेतु चयनित किया गया। शिविर प्रभारी जसबीर सिंह ने बताया कि इन सभी दिव्यांगों को आने वाले 45 से 60 दिनों में उच्च गुणवत्ता युक्त नारायण लिम्ब कोलकाता में पहनाए जायेंगे। आभार हरिप्रसाद लब्धा तथा संचालन महिम जैन ने किया।

**डीपी वर्ल्ड द्वारा डेडिकेटेड रेल फ्रेट सर्विस 'सरल' लॉन्च**

उदयपुर (ह. सं.)। डीपी वर्ल्ड ने अपनी तरह की पहली डेडिकेटेड रेल फ्रेट सर्विस 'सरल' की शुरुआत की। इस सर्विस का संचालन सूरत में हजीरा से नॉर्थ कैपिटल रीजन (एनसीआर) के बीच किया जाएगा। अपने नाम की तरह ही यह सेवा दक्षिण गुजरात में स्थित कंपनियों को डोर-टू-डोर सस्टेनेबल कार्गो सॉल्यूशन प्रदान करेगी और उन्हें एनसीआर क्षेत्र के बाजारों से जोड़ेगी।

प्रदेश, पूर्वी राजस्थान, हरियाणा और दक्षिणी पंजाब से जोड़ने में अहम भूमिका निभाएगी।

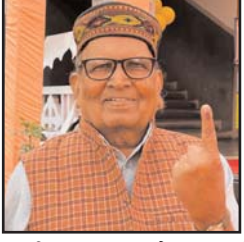


नई सरल रेल फ्रेट सर्विस दक्षिण गुजरात के प्रमुख बाजारों सूरत, वापी, वलसाड, वडोदरा, भरुच और अंकलेश्वर को एनसीआर एवं आसपास के प्रमुख बाजारों जैसे पश्चिमी उत्तर

कनेक्टिविटी के साथ अपने कार्गो को सही तरीके से लाने-ले जाने का माध्यम मिलेगा। इसके साथ ट्रेक एंड ट्रेस टेक्नोलॉजी की मदद से ग्राहकों तक कार्गो की पहुंच को ट्रैक करना भी संभव होगा। कंटेनर ट्रेलर ट्रक के माध्यम से लास्ट एंड फर्स्ट माइल कनेक्टिविटी प्रदान करने वाले डीपी वर्ल्ड के मल्टीमोडल नेटवर्क के साथ मिलकर सरल सर्विस सुनिश्चित करेगी कि किसी कारखाने से कार्गो लोड किए जाने के बाद 72 घंटे के भीतर उसे तय ड्राॅप लोकेशन तक पहुंचा दिया जाए।

कनेक्टिविटी के साथ अपने कार्गो को सही तरीके से लाने-ले जाने का माध्यम मिलेगा। इसके साथ ट्रेक एंड ट्रेस टेक्नोलॉजी की मदद से ग्राहकों तक कार्गो की पहुंच को ट्रैक करना भी संभव होगा। कंटेनर ट्रेलर ट्रक के माध्यम से लास्ट एंड फर्स्ट माइल कनेक्टिविटी प्रदान करने वाले डीपी वर्ल्ड के मल्टीमोडल नेटवर्क के साथ मिलकर सरल सर्विस सुनिश्चित करेगी कि किसी कारखाने से कार्गो लोड किए जाने के बाद 72 घंटे के भीतर उसे तय ड्राॅप लोकेशन तक पहुंचा दिया जाए।

## मतदान की वह घटना



उदयपुर (ह. सं.)। संस्कृतिविज्ञ डॉ. महेन्द्र भानावत (87) ने सेंट्रल स्कूल मतदान केन्द्र पर अपना मत दिया। उन्होंने बताया कि अब तक हुए प्रत्येक चुनाव में वे मतदान करते रहे।

जगदीश चौक मतदान केन्द्र की एक घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जब भगवतसिंह मेवाड़ वोट देकर निकल रहे थे तभी कविवर नाथूसिंह महियारिया की उनसे भेंट हो गई। महियारियाजी ने उसी समय यह दोहा उच्चरित किया-

**अण दागल चेटक रहयो, अण दागल परताप।**

**एक वोट रे कारणै, दागल व्या छो आप।।**

अर्थात् रणक्षेत्र में चेटक ने कभी अपने ऊपर कोई आंच नहीं आने दी और न राणा प्रताप ने दुश्मन की कोई छाया अपने ऊपर तक पड़ने दी किन्तु आज एक वोट के खातिर आपने अपनी कंगली को स्याहवर्णी बना दिया। सच है भगवतसिंहजी एक वोट का बहुमूल्य जानते थे।

### चार महाराणाओं के .....

#### पृष्ठ एक का शेष

कर्मल टॉड लिखते हैं- "यह दृश्य देखकर महाराणा के नेत्रों से आंसू आ गये।" सिंधिया की सेना के साथ छह माह तक संघर्ष चला। इस संकट के समय सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि सूझबूझ और कूटनीति से सिंधिया विजय पथ होने के बावजूद भी उसकी शर्तों पर नहीं अपितु मेवाड़ की शर्तों पर संधि करने हेतु विवश किया गया। यह मेवाड़ की बहुत बड़ी विजय थी। अगर जयपुर के ईश्वरीसिंह के पास भी अमरचन्द बड़वा जैसा प्रधानमंत्री होता तो उसे भी आत्महत्या नहीं करनी पड़ती। 1773 ई. में महाराणा द्वारा अमरचन्दजी को प्रसन्न होकर आटूण (भीलवाड़ा) की जागीर दी गई।

युद्ध के दौरान मेवाड़ की सुरक्षा को पुख्ता करने हेतु शहरपनाह का जीर्णोद्धार एवं सुदृढ़ीकरण कराया तथा चारों ओर गढ़ियां बनाई गईं- इन्द्रगढ़, सारणेश्वर गढ़, सूरजगढ़ एवं अम्बावगढ़।

विकट संकट में कटक मुकूट धारण कर प्रधान धर्म के यथोचित दायित्व का पूर्ण निर्वहन करने वाले निष्ठावान ढवें स्वामीभक्त प्रधान की उसी दरबार में किसी दासी के बहकाने मात्र से विष देकर जान ले लेना मेवाड़ के इतिहास का बेहद दुःखद अध्याय है।

डा. अमरचन्दजी बड़वा का प्रधानमंत्रीत्व काल भले ही युद्ध एवं संघर्ष की रणनीति में जयादा बीता किन्तु इसके बावजूद उन्होंने आमजन के सर्वांगीण विकास एवं पारलौकिक चेतना को ध्यान में रखते हुए वैष्णव, शिव एवं कृष्ण की भक्ति के लिए मन्दिरों का निर्माण किया। कुम्भाकालीन स्थापत्य परम्परा को इन मन्दिरों के निर्माण के माध्यम से अक्षुण्ण बनाये रखा। उन्होंने अमरकुण्ड, अमरचन्द्रिया तालाब, गणगौर घाट स्थित त्रिपोलिया, बागौर की हवेली, अमरओटा, बड़ा रामद्वारा, उदयपुर शहरपनाह, गणगौर मार्ग पर स्थित अमर नारायण एवं अमरेश्वर महादेव मन्दिर आदि का निर्माण एवं जीर्णोद्धार करवाया।

मेवाड़ भाग्यशाली था कि उसे चाणक्य के समान एक स्वामीभक्त, राजनिष्ठ प्रधान मिला। जो शस्त्र-शास्त्र का ज्ञाता, प्रगल्भ, प्रतिकार और प्रतिवाद करने में समर्थ, उत्साही, पवित्र हृदय, स्वामी में दृढ़ अनुयायन रखने वाला, शील, बल, आरोग्य तथा निराभिमानी जैसे गुणों से युक्त था। यही वजह थी कि मेवाड़ ने 16वीं सदी के मुगल आक्रमण के बाद सबसे बुरे दौर से गुजरने के बाद भी अपने गौरवपूर्ण इतिहास में कहीं भी कलंक नहीं लगने दिया। मेवाड़ को उतनी हानि न सहनी पड़ी जितनी कि राजस्थान की अन्य रियासतों को। प्रो. के. एस. गुप्ता ने डा. अमरचन्द बड़वा के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए ठीक ही लिखा- 'यह एक ऐसा व्यक्तित्व अगर 16वीं सदी में होता तो भामाशाह, झालाबीदा और रामशाह से कम पूजनीय नहीं होता।'

यह स्वाभिमानी और ईमानदार प्रधान दरबार की आंतरिक राजनीति से बच न सका और इसका अन्त बड़ा दुःखद रहा। 1773 ई. में अल्प वयस्क हमीरसिंह द्वितीय महाराणा बने अतः राजकाज राजमाता सरदार कुंवर सम्भालती थी। अमरचन्द पर जब सरकारी सम्पत्ति के अपहरण के मिथ्या आरोप लगे तो उस स्वाभिमानी व्यक्ति ने व्यथित होकर अपनी समस्त सम्पत्ति छड़कों में भर महलों में भिजवा दी। जब उनका निधन हुआ तब उनके घर में कफन हेतु कपड़ा भी नहीं मिला। अंततः राजकोष से इस स्वाभिमानी प्रधान की अन्तिम क्रिया सम्पन्न हुई।

**नोट :** ठाकुर अमरचन्द बड़वा पर शीघ्र ही एक पुस्तक प्रकाशनाधीन है। इसका प्रकाशन लोकजन सेवा संस्थान तथा ठाकुर अमरचन्द बड़वा स्मृति संस्थान, उदयपुर से हो रहा है। यह जानकारी योजना संकल्पक जयकिशन चौबे ने दी। **सं.**

### मीरां बनना किसी.....

#### पृष्ठ एक का शेष

अफसोस तो तब होता है कि जानकारी की शून्यता के रहते सूरदास के लिखे पद को भी विद्वानों ने मीरां के पद बनाकर सूरदास की छाप के स्थान पर मीरां के नाम की छाप लगा दी।

राजघराने के उस काल का अध्ययन किया जाय तो पता लगेगा, कृष्णोपासिका मीरां उदयपुर राजघराने में प्रशंसा प्राप्त नहीं थी। यहां का पूरा घराना ही रोमोपासक है फिर पति भोजराज शिवजी के आराधक थे। मीरां और भोजराज दोनों के दो भिन्न पथ थे। भोजराज ने अपने समय में जगह-जगह शिवलिंगों की स्थापना कराई। वे आज भी देखने को मिलते हैं।

अधिक अच्छा तो यही होगा कि कुछ समय के लिए मीरां का अध्ययन बन्द कर जो कुछ लिखा गया है उसका पारायण कर विद्वान उसकी प्रामाणिकता की खोज करें। एक पत्रिका ने तो यह घोषणा ही कर रखी है कि हमारी ओर से मीरां के प्रामाणिक पदों के जो संकलन हैं वे ही प्रामाणिक हैं। अन्य जो भी संकलन हैं वे हमारी दृष्टि में प्रामाणिक नहीं हैं सो अपने लेखन में उन्हीं पदों का उल्लेख करें जो हमारे द्वारा मान्य हैं।

विद्वानों ने मेरा विनम्र आग्रह है कि ऐसा फरमान मीरांबाई को क्या जीवित रख सकेगा। मीरां तो लोक के कारण चर्चित हुईं और आगे भी लोक ही उसे जीवन्त बनाये रखेगा। विद्वानों की दुनियां से लोक की अस्मिता जुदा है। मीरां लोकनिधि है। वह कभी राजनिधि नहीं हुईं न राजघरानों ने उसे मान्यता, प्रतिष्ठा और सम्मान ही दिया। इस दृष्टि से मीरां का अब तक जो भी, जितना भी, जैसा भी अध्ययन हुआ है वह कदापि प्रामाणिक, सच्चा, सुधरा तथा समयोचित नहीं कहा जा सकता।

विद्वानों ने मीरां के सत्य तथ्य को इतना उलझा दिया कि सचमुच की मीरां का पता लगाना ही दुष्कर हो गया और वह मात्र मिथक बनकर रह गई। यह भी कि आये दिन जो मीरांजनित संगोष्ठियां होती हैं या साहित्यिक चर्चा होती है उसमें मीरां सहित किसी भी साहित्यकार को प्रासंगिक करार दिया जाता है। उन कवियों का समय और आज का समय सर्वथा भिन्न दिखाई भी दे रहा है लेकिन अध्ययन करने की जो धारा चली आ रही है उसी पर अंधे की लाठी लिये हमारे बंधु चल रहे हैं।

## बिहार के प्रख्यात लोकगायक भरतसिंह भारती

-अश्विनी कुमार आलोक-

हवा अभी अपनी गांधिल आमद से अघायी नहीं है। चिड़ियों ने पेड़ों पर बने हुए घोंसलों में अभी सिर्फ पर खोले हैं। उन्होंने उड़ती हुई खुशी के रंग-रूप समेटने से पूर्व थोड़ी अंगड़ाई ली है। बैलों के गले की घंटियों का सुर अभी थोड़ी देर बाद कोरस बनेगा। दालानों में किसानों ने जमा दिये हैं गड़ासों पर मूठ, जनेरे के हरे-कचोर तने से उठनेवाले ताल का है कोई राग सम्मोहन।

कह नहीं सकते कि किस मचान से उठी वह लय, जिसकी गुलेल ने कलेजे को निशाने पर लिये बिना ही तोड़कर रख दिया आसमान - सा आसन, हिलाकर रख दीं स्थिर समाधियां और खोल दिये भावों के आकुल वितान। वास्तव में यह लोकसंगीत का कोई सघन उच्छ्वास था, जिसने निर्बाध संवेदनाओं से गति ली और विस्तृत वलय में विस्तीर्ण होता चला गया। यह लोकस्वर था, जिससे सादगी उतरी थी कोई अलभ्य आस्वाद का अवसर लेकर। हृदय के समस्त मनोभावों, गांव के पारस्परिक संस्कारों एवं मान्य परंपराओं की इसी अंतर्वस्तु के गायक हैं भरतसिंह भारती, जिनके गायन ने समूची दुनिया में अपनी पहचान बनाई है।

भरतसिंह भारती की इस पहचान के दीवाने लोग उन्हें बीते सात दशकों से सुन रहे हैं, सुनना चाहते हैं। लोकसंगीत के आदिम आचारों में जीवन का संचरित माधुर्य बांटने वाले भरतसिंह भारती की आवाज़ इस देश के आकाशवाणी-दूरदर्शन केन्द्रों एवं बड़े मंचों से किसने न सुनी होगी। महेंदर मिसिर एवं भिखारी ठाकुर की पूर्वी, पारंपरिक निर्गुण और लोकसंगीत का एक-एक प्रकार भरतसिंह भारती उत्सव की तरह उठाते हैं और उसे प्रसाद की तरह हर कोई अपनी हथेलियों में सहज लेता है। उन्होंने अपनी ओर से भी अनेक लोकगीतों की रचना की है। लोकगीतों की उनकी पुस्तक 'सप्त सरोवर' नाम से प्रकाशित है। लोक गायन सम्बन्धी इसी स्वीकार्यता ने भरतसिंह भारती को बड़े पुरस्कार भी दिलवाये हैं। भरतसिंह भारती बिहार की लोकसंगीत गायन - परम्परा में मूर्द्धन्य पीढ़ी के कलाकार हैं।

भरतसिंह भारती को हाल ही में

### आदिम रागों में.....

#### (पृष्ठ पांच का शेष)

गोरिया को देख रेगिस्तानी लंगा-मांगणियारों में प्रचलित मोरचंग की स्मृति आती है। इसे नृत्य के समय, गीत गाते समय और पशु चराते वक्त बजाया जाता है। कुंडी नगाड़े का लघु आकार लिए होती है। थालीसर शोकसूचक वाद्य है।

मृतक को जमीन में गाड़ने के पश्चात इसे ध्वनित किया जाता है। थाली में रखे मोम पर बांस की छड़ खड़ी कर दोनों हाथों की अंगुलियों को बारी-बारी से ऊपर-नीचे करने से जो स्वर निकलता है वह वातावरण को और अधिक गमगीन बना देता है। एक स्वर का यह वाद्य वादक अपनी गोद में रखकर बजाता है।

बांस की पट्टी पर बांस ही की तिलियों वाली पट्टी का रगड़ा देने पर खुर-खुर की अजीब आवाज देने वाला टांपरा अन्य कोई स्वर नहीं देता। ढाक, ढोल सभी जातियों में मिलते हैं। इनके विविध प्रकार तथा बजाने की भी अलग-अलग घाई हैं। अलग-अलग वक्त पर बजनेवाला ढोल अलग-अलग अर्थ-संदर्भ-प्रसंग का घोटक होता है। पहाड़ियों पर छितरी बिखरी बस्तियों को सूचना देने के लिए ढोल की उपादेयता निर्विवाद है।

यदि इन वाद्यों का गहराई से अध्ययन किया जाय तो आदिवासी जनजीवन में प्रचलित ज्ञान-संपदा के

उनके लोकगायन के लिए उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़ ने अमृत पुरस्कार से सम्मानित किया है। दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित एक समारोह में उन्हें यह पुरस्कार दिया गया। वे बीते सत्तर



सालों से लोकगीतों के संरक्षण एवं संवहन में लगे हुए हैं। वे अभी तक आकाशवाणी और दूरदर्शन, पटना में ए ग्रेड के कलाकार थे, अब उन्हें टाप ग्रेड पर प्रतिष्ठित किया गया है। वे पांच हजार से अधिक लोकगीत गाकर इस दिशा में एक कीर्तिमान स्थापित कर चुके हैं। इस उपलब्धि के लिए बिहार सरकार ने उन्हें विध्यवासिनी देवी पुरस्कार से सम्मानित किया है।

इस देश के सभी बड़े मंचों से इनकी गायकी गुंजी है। इसके अलावा इन्हें मारिशस, फीजी, सिंगापुर, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भी भोजपुरी लोकगीतों की मिठास बांटने का श्रेय प्राप्त है। भरतसिंह भारती ने गायन के साथ साथ लोकगीतों की आंचलिक सौम्यता और भाषिक सहजता पर व्याहारिक प्रयोग किये हैं। हिन्दी क्षेत्रों की बोलियों के साथ साथ अहिन्दी भाषी राज्यों की बोलियों के साथ भोजपुरी लोकगायन का साहचर्य सिद्ध किया है।

20 नवंबर 1936 को बिहार के भोजपुर जिले के नोनौर, थाना सहार में जन्मे भरतसिंह भारती ने गया अवस्थित मगध विश्वविद्यालय से 1962 में स्नातक (हिन्दी) की पढ़ाई पूरी की थी। जब वे दस वर्ष के थे, तभी से गांव की कीर्तन मण्डली में गाने लगे थे। पन्द्रह साल की उम्र में आरा के प्रसिद्ध मृदंग एवं पखावज वादक शत्रुंजय प्रसादसिंह से इन्होंने गायन और वादन का विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया। लोकगीतों के माध्यम से समाज में अश्लीलता और फूहड़पन पड़ोसने के

आगे हैरानी होगी। जिन्हें हम अपने से सर्वथा पिछड़ा मानते हैं वे वस्तुतः हम से अगड़ा ही हैं। जितने भी आधुनिक वाद्यों की धमक चमक और तूती हमें दिखाई दे रही है, उनका मूलाधार इन्हीं आदिवासियों द्वारा अन्वेषित बाजे हैं। समृद्ध परम्परा उनके पास है, उसका समझदारीपूर्वक समय रहते संरक्षण करने की आवश्यकता है।

यह सही है कि शब्दों का स्पर्श पाकर ज्ञान की शक्ति क्षीण होती लगती है। इस संबंध में डॉ. कपिल तिवारी का यह कथन उल्लेखनीय है- 'ज्ञान जब लिपि, अक्षरों और शब्दों में ढलता है तो वह अपनी त्वरा, अपनी शक्ति खो बैठता है। देवता जब तक धारणा और अवस्था में हैं तब तक उनका अस्तित्व अलग है।

जैसे ही वे प्रतिमा और प्रतीकों में ढले उनका असीमित प्रभाव सिमटने लगता है। जो सर्व स्वरूप है, सर्वव्यापी है उसे हम एक स्वरूप में बांध भी कैसे सकते हैं। हजारों की भीड़ के सम्मुख संबोधित करने वाले धार्मिक प्रवक्ता इस अर्थ में खतरनाक हैं।'

ऐसे में हमारे आदिवासी ही सच्चे सपूत हैं जिन्होंने अपने ज्ञान को शब्दों में नहीं ढालकर उसकी शक्ति को कभी विनष्ट नहीं होने दिया और जब-जब भी वे गाने बजाने बैठते हैं, सर्वप्रथम उस सुरसतमाई स्वरप्रदात्री सरस्वती माता का आह्वान करते हैं कि वह उन्हें उस ज्ञान की गुंडी खोलने की चाबी दे ताकि

विरुद्ध रहे भरतसिंह भारती एक शिक्षक रहे। शिक्षा के माध्यम से समाज में संस्कार और शालीनता बनाये रखने के लिए जाने जाते रहे। इन्हें 1998 में सेवानिवृत्ति दी गई।

आकाशवाणी के पटना केंद्र से इनका जुड़ाव वर्ष 1962 से ही रहा। उन दिनों इन्हें बी हार्ड श्रेणी में रखा गया था। पटना में दूरदर्शन केन्द्र नहीं था, तब इन्हें लखनऊ दूरदर्शन केन्द्र आमंत्रित करता था। बाद में मद्रास, दिल्ली, मुजफ्फरपुर, भुवनेश्वर और रांची दूरदर्शन केन्द्रों से भी लोकप्रिय लोकगायक के रूप में इन्हें ख्याति मिली। 1990 में पटना में दूरदर्शन केन्द्र की स्थापना के साथ ही यह

वरिष्ठ लोकगीत गायक के रूप में जुड़ गये। वरिष्ठ कलाकारों की श्रेणी में इन्हें 1995 में सम्मिलित किया गया।

भरतसिंह भारती बहुत सम्मानित एवं शीर्षस्थ कलाकारों की श्रेणी में सम्मिलित किए गए हैं। उन्हें पूर्व राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी के सम्मान में आयोजित कार्यक्रम में लोकगायन के लिए तत्कालीन मुख्यमंत्री एवं राज्यपाल ने संयुक्त रूप से सम्मानित किया था। उनके गाने हुए लोकगीतों के कैसेट 'पुरबिया तान' का विमोचन मारिशस के तत्कालीन राष्ट्रपति अनिरुद्ध जगन्नाथ ने किया था। भारतीय जनता पार्टी ने भोजपुर में आयोजित एक कार्यक्रम में इन्हें भिखारी ठाकुर स्मृति सम्मान से सम्मानित किया था। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद कला एवं युवा विकास समिति ने इन्हें भिखारी ठाकुर सम्मान से सम्मानित किया। इस प्रकार के अनेक सम्मानों से सम्मानित भरतसिंह भारती ने अनेक संगीत पुरस्कार योजनाओं के निर्णायक के रूप में भी भूमिका निभाई है।

भरतसिंह भारती का गायन गांव के प्राकृतिक स्वरूप का यशगान है। ठीक ऐसा मनोहर आस्वाद जो छद्म विहीन अपनापन का शृंगार होता है जैसे धूलसने पांवों से कोई खेतों में उतर रहा हो और लय पसरी जा रही हो। बिहार के लोकगीतों को समूचे देश में अपनी स्वरलहरियों के माध्यम से शीर्ष पर प्रतिष्ठित करने वाले भरतसिंह भारती को उनके सांस्कृतिक अवदान के लिए पद्म पुरस्कार दिया जाना चाहिए।

- लेखक के संपर्क नं. 8789335785

उसकी रजामंदी से वे अपनी गावणी बजावणी कर सकें।

### संदर्भ सूत्र:

कुंवारे देश के आदिवासी, डॉ. महेन्द्र भानावत, मुक्तक प्रकाशन, उदयपुर

जनजाति जीवन और संस्कृति, डॉ. नरेंद्र एन. व्यास तथा डॉ. महेन्द्र भानावत, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली

मेवाड़ राज्य का भूगोल, बलवंतसिंह मेहता, साहित्य कुटीर, उदयपुर

राजस्थान के लोकवाद्य, रमेश बोराणा, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर

जनजातियों के धार्मिक सरोकार, डॉ. महेन्द्र भानावत, मुक्तक प्रकाशन, उदयपुर

भाखर रा भोमिया, डॉ. अर्जुनसिंह शेखावत, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली आदिवासी जीवनधारा, डॉ. नरेन्द्र एन. व्यास तथा डॉ. महेन्द्र भानावत, हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर

ट्राईब पत्रिका का जनजाति कला एवं संस्कृति विशेषांक, अतिथि संपादक डॉ. महेन्द्र भानावत

शब्दों में ढलते ही खो जाती है ज्ञान की शक्ति, डॉ. कपिल तिवारी, भास्कर, 14 अगस्त 2015, पृ. 8

अनहद, डॉ. महेन्द्र भानावत, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल, 2015

## लुप्त होती कुण्डियां, ओखली और सिलबट्टे

-पुरुषोत्तम सैलानी-

धरती के गर्भ में छिपे बेजान पत्थरों को खोजकर उनमें प्राण फूंकने वाले पत्थरतराश कारीगरों ने खुद को पत्थर कर लिया, लेकिन कई पीढ़ियां गुजरने के बाद भी वे अपना भविष्य नहीं तराश पाए। सुबह से लेकर शाम तक चक्की के पाटों, सिलबट्टों, कुण्डियों तथा कपड़े टांगने वाली कलात्मक खूंटियों का रूप देने वाले इन संग तराशों की कई-कई पीढ़ी इसी काम में गुजर गई लेकिन गैरों को लजीज तरकारी का स्वाद चखने वाले स्वयं जिन्दगी के हर स्वाद से वंचित हैं। जहां स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हर क्षेत्र में सैकड़ों कारीगर इस व्यवसाय से जुड़े थे, वहीं हाथ की चक्कियों के लुप्त होने से तथा मिक्सी के प्रचलन से अब इस कारोबार से जुड़े रहना स्वयं को भूखा मारने जैसा हो गया है। कुण्डियां एवं सिलबट्टों पर रगड़ी गई ठण्डाई तथा लहसुन, प्याज, पुदीना की चटनी आज की बोलत बन्द चटनी से कहीं अधिक स्वास्थ्यवर्धक और स्वादिष्ट हुआ करती थी लेकिन अब मशीनों के क्रान्तिकारी युग में कुटीर उद्योगों का तो सफाया हो ही रहा है, साथ ही खाद्य पदार्थों की पौष्टिकता का स्तर भी गिरता जा रहा है।

धरती पर जितनी पुरानी विकसित मानव सभ्यता है उससे भी पुराना है संगतराशी का इतिहास, जिसके मोहनजोदड़ो, हड़प्पा सभ्यता एवं पिंजौर की भीमा काली से मिले 5 हजार वर्ष पुराने



अवशेष संग तराशी की समृद्ध कला की जीती जागती मिसालें हैं। इनके भग्नावशेष आज भी दिल्ली के संग्रहालय में मौजूद हैं।

धरती के गर्भ में छिपे बेजान पत्थरों को खोजकर उनमें प्राण फूंकने वाले पत्थरतराश कारीगरों ने खुद को पत्थर कर लिया, लेकिन कई पीढ़ियां गुजरने के बाद भी वे अपना भविष्य नहीं तराश पाए। सूर्य के ताप से विदग्ध हुई धरती हो या फिर जमाव बिन्दू को परिलक्षित करती हुई शीतलहर, प्रायः हर मौसम में भारत के कोने-कोने में निर्जीव पत्थरों को सुबह से लेकर शाम तक चक्की के पाटों, सिलबट्टों, कुण्डियों तथा कपड़े टांगने वाली कलात्मक खूंटियों का रूप देने वाले इन संग तराशों की कई-कई पीढ़ी इसी काम में गुजर गई लेकिन गैरों को लजीज तरकारी का स्वाद चखने वाले स्वयं जिन्दगी के हर स्वाद से वंचित हैं।

जिस प्रकार पत्थर पर पीसे बिना हिना (मंहेदी) रंग नहीं छोड़ती, ठीक उसी तर्ज पर मसालों को रगड़े-घोटे बिना लजीज तरकारी भी सम्भव नहीं है। आज आधुनिकीकरण के नाम पर ग्राइन्डर्स, मिक्सी एवं अन्य दूसरे बिजली चलित उपकरणों के प्रचलन ने बेशक कुण्डियां और सिलबट्टों की मांग कम कर दी है लेकिन जो

स्वाद कुण्डियां या सिलबट्टे पर रगड़ी गई पुदीने की चटनी का है वह अन्य उपकरणों से तैयार की गई चटनी में कहां? देश में तेजी से पनी फास्टफूड की डिब्बा बन्द संस्कृति ने

आज इस व्यवसाय को भी इस हद तक नुकसान पहुंचाया है कि अब संगतराशी के व्यवसाय में गिने चुने लोग ही रह गये हैं। जहां स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हर क्षेत्र में सैकड़ों कारीगर इस व्यवसाय से जुड़े थे, वहीं हाथ की चक्कियों के लुप्त होने से तथा मिक्सी के प्रचलन से अब इस कारोबार से जुड़े रहना स्वयं को भूखा मारने जैसा हो गया है। इसी कारण से पूरे देश में लाखों कारीगरों की संख्या अब सिमट कर सैकड़ों तक सीमित हो गई है।

मेवात के कस्बा पिनगवां में सिलबट्टा एवं चक्की तराशने के पारम्परिक धंधे से जुड़े हरीसिंह का कहना है कि सुबह से शाम तक हाड़ तोड़ मेहनत के बावजूद इस व्यवसाय में अब इतना भी फायदा नहीं है कि परिवार का गुजारा ठीक ढंग से चल सके। काम भी कम जोखिम भरा नहीं है। बड़े-बड़े वजनी पत्थरों को टुकड़ों में लादकर जब राजस्थान के अलवर जिले से यहां लाया जाता है तो अनेक कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। ओखली इत्यादि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले कलात्मक टोड़ों के लुप्त होने से भी संगतराशों की कमर टूटी है। इसी प्रकार आजादी से पूर्व प्रसिद्ध पर्यटन कस्बा पिंजौर कुण्डियां, सिलबट्टों एवं चक्कियों के निर्माण का प्रमुख केन्द्र हुआ करता था लेकिन अब यह कला यहां से भी लुप्तप्राय है। पहले घग्घर नदी के क्षेत्रों कालका, पिंजौर, रामगढ़ एवं मोरनी में लगभग एक हजार कारीगर संगतराशी के काम-धंधे से जुड़े थे परन्तु अब इनकी संख्या महज दो दर्जन तक सिमट गई है।



कुण्डियां, सिलबट्टे बनाने वाले सोहनलाल का कहना है कि वे उस वक्त से ही इस कार्य में हैं जब वे महज 8 वर्ष के हुआ करते थे। आज उनकी

कई पीढ़ियां इसी कारोबार से जुड़ी हैं लेकिन अगली पीढ़ी को वे इस काम में डालने की बजाय उन्हें पढ़ा-लिखाकर अच्छे व्यवसाय या सरकारी नौकरी में भेजने के इच्छुक हैं। सारा दिन छैनी-हथौड़े की ठकठक एवं कड़े परिश्रम के बाद एक कारीगर मात्र तीन या चार कुण्डियां बना पाता है जिसकी कीमत मुश्किल से 50-60 रुपये ही मिल पाती है। संगतराशी के इस कारोबार में मुश्किलें भी कम नहीं हैं। जिन पत्थरों पर तराशी की जाती है उन्हें धरती की 70-80 फीट की गहराई से खोदकर निकाला जाता है।

इसकी अमुख वजह यह बताई जाती है कि धरती के अन्दर सैकड़ों वर्ष से दबे पत्थरों पर तराशी का कार्य आसान होता है क्योंकि ये पत्थर ऊपरी सतह के पत्थरों की तुलना में अपेक्षाकृत नरम होने से तराशी में अधिक उपयुक्त होते हैं। इनका चयन रेतीले होने तथा पत्थर के रेशे के आधार पर किया जाता है। देश के प्रत्येक कोने में पाये जाने वाले सिलबट्टे और ओखली बनाने वाले इन मेहनतकशों की किसी भी प्रदेश में अच्छी स्थिति नहीं है।

राजस्थान के हिण्डौन क्षेत्र के गांव कोटरी एवं उत्तरप्रदेश के खुर्जा से भी अब यह कला लुप्तप्राय है। अब वहां ऐसे बहुत कम लोग हैं जो इस धंधे में अपने बालबच्चों को लगाना पसन्द करते होंगे, वरन जो बुजुर्ग इससे जुड़े हैं उनके साथ ही यह कला भी समाप्त हो जाएगी किन्तु मथुरा शहर में चौबों के अखाड़े में घुटती भंग और ठण्डाई सिलबट्टों की प्रासंगिकता को आज भी प्रामाणिक करती है।



स्वादिष्ट हुआ करती थी लेकिन अब मशीनों के क्रान्तिकारी युग में कुटीर उद्योगों का तो सफाया हो ही रहा है, साथ ही खाद्य पदार्थों की पौष्टिकता का स्तर भी गिरता जा रहा है। हालांकि आयुर्वेदिक दवाइयों के कूटने-पीसने में आज भी इन्हीं टोपीनुमा कुण्डियों का प्रयोग हो रहा है लेकिन सरकारी प्रोत्साहन के अभाव में यह कला धरती से एकदम लुप्त भी हो जाए तो कोई विस्मय की बात नहीं है।

## देवारी द्वार और राजराजेश्वर मंदिर

-डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'-

उदयपुर घाटे घाटियों और नालों, मोर्चों से घिरा प्राकृतिक नगर है। रेल से उदयपुर आने वाले जानते हैं कि जहां से रेल सुरंग में प्रवेश करती है, वह 1899 ईस्वी में बनाई गई थी। ब्रिटीशों के बाद अब नई सुरंग बन गई है। यहां देवारी का दरवाजा है। मूलतः यह देवबारी (देवता का दरवाजा या देहबारी) था। धीरे-धीरे इसको देवारी का दरवाजा कहा जाने लगा। समीपवर्ती त्रिमुखी बावड़ी की 1690 ईस्वी की प्रशस्ति में कहा गया है -

श्रीसर्वतुविलासाख्यं स्वारामं कृत्वांस्तथा।  
दहबारी महाघट्टे द्वार काष्ठकपाटयुक् ॥ 20 ॥  
यहां 17वीं सदी में महाराणा राजसिंह (प्रथम) के शासनकाल में किंवाड़ लगाए गए थे। देवारी के दरवाजे में 1674 ईस्वी का एक लेख पढ़ा जा सकता है - महाराजाधिराज महाराणा श्री राजसिंहजी आदेसात् कमठाण, सवण सुदि 5 सोमे संवत् 1731 विषै (दहबारी) पोल रा कमाड़ चढाव्या। लिखतु जोसी गोरखदास साह पंचोली नाथू।

महाराणा राजसिंह (द्वितीय) की माता झाला वंशजा बख्तकुंवरी ने यहां एक शिवालय बनवाया। यह मंदिर वर्तमान में एकलिंगी मन्दिर ट्रस्ट के अधीन है। इसके आगे सुंदर बावड़ी बनी है। पास में कभी सराय भी थी ताकि उदयपुर आने जाने वालों को सुविधा मिल सके।

इस मंदिर के निर्माण बाद शिलोत्कीर्ण करवाने के लिए प्रशस्ति की रचना की गई थी किन्तु वह उत्कीर्ण न हो सकी, अब भी हो जाए तो अच्छा हो। यह प्रशस्ति विक्रम संवत् (श्रावणादि)



1819 (चैत्रादि गणना से) संवत् 1820 तदनुसार शकाब्द 1685 के वैशाख शुक्ला 8, गुरुवार की है यानि 21 अप्रैल, 1763 ईस्वी की है।  
भट्ट सोमेश्वर ने इसकी रचना की थी। यह 68 श्लोकों की है और इसका पहला श्लोक है-  
विघ्नेश्वरं सगिरीशं गिरिजामेतं  
सोमेश्वरो द्विजवरो विबुधांश्च नत्वा।  
श्रीराजसिंह जननी कृत शम्भुसय  
वापी प्रशस्ति रचना क्रममातनोति ॥ 1 ॥

अर्थात्- विघ्नेश्वर गणपति को महादेव और पार्वती सहित नमन, विप्रवर्य सोमेश्वर देवताओं को भी प्रणाम करता है और श्रीराजसिंह की माता द्वारा बनवाए शिवालय और बावड़ी की प्रशस्ति की



रचना करता है। सोमेश्वर भट्ट रूपजी का पुत्र था। रूपजी भी विद्वान थे। सोमेश्वर की यह रचना अब तक अनुत्कीर्ण है। इसमें उदयपुर के संस्थापक महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप, महाराणा अमरसिंह, महाराणा कर्णसिंह, महाराणा जगतसिंह, महाराणा राजसिंह प्रथम, महाराणा जयसिंह से लेकर राजसिंह द्वितीय तक के शासकों की उपलब्धियों का वर्णन श्लोकबद्ध है। न केवल गुहिलवंश बल्कि इसमें झाला राजवंश का भी

विवरण मिलता है जो पराक्रम का धनी था और मेवाड़ राजवंश का बड़ा सहयोगी रहा। बख्तकुंवरी काठियावाड़ के रणछोड़पुरी के शासक झाला कर्णसिंह की पुत्री थी और महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय की रानी थी। उसने इस मंदिर को ऊंची कुर्सी पर बनवाया है। राजराजेश्वर के नाम से इसकी पहचान है और इसमें शिव मुखलिंग के रूप में विराजित रहे हैं। इसकी प्रतिष्ठा का कार्य पंडित नंदराम ने किया था।

इस प्रशस्ति का सारांश गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने उदयपुर राज्य का इतिहास में दिया। पुरावेत्ता श्री रतनचंद अग्रवाल को यह झालावाड़ राजस्थान के संग्रहालय के संस्थापक श्री गो. ला. व्यास से प्राप्त हुई थी जिसको उन्होंने मुनि हजारीमल स्मृति ग्रंथ के तीसरे भाग में प्रकाशित करवाया था। हाल ही मुझे इसका पाठ मिला तो याद आया कि जिस मंदिर का विवरण मैंने 1995 में लिखा था, उसकी प्रशस्ति मेरे हाथ में है। यह प्रशस्ति मेवाड़ के इतिहास पर प्रकाश डालती है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि बख्तकुंवरी हरिभजन में निमग्न रहती थी। उन्होंने अपने पुत्र महाराणा राजसिंह, जिन्होंने सात साल ही शासन किया, की स्मृति में यह शिवालय बनवाया। रानियों ने देवालय और बावड़ियों के निर्माण में रुचि ली है, यह प्रशस्ति भी जाहिर करती है।